शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जुलाई : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, अषाढ़, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : ३

बोध का पात्र

★

सत्पुरुषों के चरण का इच्छुक; सदैव सूक्ष्म बोध का अभिलाषी; गुणों के प्रति प्रशस्तभाव रखनेवाला; ब्रह्मचर्य में प्रीति रखनेवाला; जब स्वदोष देखता है, तब उसे छेदने में उपयोग रखनेवाला; उपयोग से—सम्यक् सावधानता से एक भी डग भरनेवाला; सम्यक् एकांतवास की प्रशंसा करनेवाला; तीर्थादि प्रवास में उत्साहवान्; आहार-विहार और निहार का संयमी; अपना बड़प्पन छिपानेवाला—ऐसा कोई भी पुरुष (आत्मा) महावीर प्रभु के बोध का पात्र है।

(—श्रीमद् राजचन्द्रजी)

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२१८]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी)

(तीसरी आवृत्ति)

छपकर तैयार हो गया है। तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से माँग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकांतपूर्वक नयार्थ भी दिये हैं, और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय प्रमाण द्वारा-सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्त्वप्रेमियों को यह ग्रंथ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र संख्या ९०० करीब, मूल्य लागत मात्र ५), पोस्टेज आदि अलग। पचास ग्रंथ मंगानेवालों को दस टका कमीशन; सौ पुस्तक में बीस टका कमीशन और १० पुस्तक से कम मँगाने पर कमीशन नहीं देंगे।

पता—**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जुलाई : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, अषाढ़, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : ३

सैद्धांतिक चर्चा

लेखांक—२

पर्याय में क्रम-अक्रमपने का सम्यक् अनेकांत, सर्वज्ञ स्वभाव का निश्चय, ज्ञान और ज्ञेय में तीनों काल सुनिश्चितपना, अकर्तापने का-स्वसन्मुख ज्ञातापन का सच्चा पुरुषार्थ, काल, स्वभाव, नियति और कर्म में अनेकांतपना तथा व्यवहारनय का विषय की मर्यादा, अकाल मृत्यु आदि अनेक विषय सर्वज्ञ वीतराग कथित आगमानुसार इस लेखमाला में आवेंगे जिसमें अपूर्व तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा होगी, वह मध्यस्थता-और धैर्य से यह लेख पढ़कर सच्चे समाधान को प्राप्त करेंगे। अभी तो प्रस्तुत लेख में भूमिका ही है। *[संपादक]*

[देखिये—यहाँ क्रमबद्ध यथार्थरूप से मानने का फल अकर्तापना का महान पुरुषार्थ है, ऐसा कहा है। (१) क्रमबद्ध मानने से सत्य पुरुषार्थ का नाश होता है। और (२) क्रमबद्ध एकांत मिथ्या नियतिवाद है, ऐसा अज्ञानियों का कथन उपरोक्त आधार से मिथ्या ठहरता है।]

तथा पृष्ठ ७८ में लिखा है कि '**सर्वज्ञ व क्रमबद्धपर्याय पर विश्वास न रखनेवाले का मन बे-लगाम दौड़ लगाता ही रहता है।**'

गुजराती कोष व गुजराती कार्तिकेयानुप्रेक्षा में क्रमबद्ध शब्द तथा उसका अर्थ

२५—स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा (गुजराती भाषा में श्री राजचंद्र ज्ञान प्रचारक ट्रस्ट, अहमदाबाद से संवत् २००७ में छपी) पृष्ठ १२३, गाथा १४४ में लिखा है कि "**द्रव्य तो**

त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायो नुं समुदाय छे, अने काल भेदथी 'क्रमबद्ध' पर्यायों थाय छे।''

लगभग चालीस वर्ष पहले गुजरात विद्यापीठ नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद से प्रकाशित 'सार्थ गुजराती जोड़नी कोष (लेखक - श्री गांधीजी)' में 'क्रम = एक पछी एक आवे ऐसा, संकलनाबद्ध; नियम क्रमवाला; क्रमबद्ध; इसलिये क्रमनियमित का गुजराती भाषा में अनुवाद क्रमबद्ध ही होना चाहिये—ऐसा सिद्ध होता है।'

भूत-भविष्य पर्यायें ज्ञान प्रति नियत, प्रत्येक पर्याय-नियतस्वरूप ज्ञान को अर्पण अपना स्वरूप ज्ञान को अर्पण

२६—श्री प्रवचनसार, गाथा ३८, पृष्ठ ४५ में भगवान श्री अमृतचंद्राचार्यजी ने नीचे अनुसार कहा है—'जो (पर्यायें) अब तक भी उत्पन्न ही नहीं हुईं और जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं और वे (पर्यायें) वास्तव में अविद्यमान होने पर भी ज्ञान के प्रति नियत होने से (ज्ञान में निश्चित स्थिर लगी हुई होने से, ज्ञान में सीधी ज्ञात होने से) ज्ञान-प्रत्यक्ष वर्तती हुई, पाषाण-स्तंभ में उत्कीर्ण, भूत और भावी देवों (तीर्थंकर देवों) की भाँति अपने स्वरूप को अकम्पतया (ज्ञान को) अर्पित करती हुई, (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं।'

भूत भविष्य सर्व पर्यायें ज्ञान प्रभु शक्ति से अत्यंत आक्रमित वे सब पर्यायें स्वरूप सर्वस्व को युगपद ज्ञान को अर्पित करे, ऐसा परस्पर अनिवार्य संबंध

२७—गाथा ३९ में यही बात विशेष दृढ़ की है, उसमें लिखा है कि 'जिसने अस्तित्व का अनुभव नहीं किया है और जिसने अस्तित्व का अनुभव कर लिया है—ऐसी (अनुत्पन्न और नष्ट) पर्यायमात्र को यदि ज्ञान, अपनी निर्विघ्न विकसित अखंडित प्रतापयुक्त प्रभुशक्ति के द्वारा बलात् अत्यंत आक्रमित करे (प्राप्त करे) तथा वे पर्यायें अपने स्वरूप सर्वस्व को अक्रम से अर्पित करे (एक ही साथ ज्ञान में ज्ञात हो) इस प्रकार उन्हें प्रतिनियत न करे (अपने में निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने) तो उस ज्ञान की दिव्यता क्या है? इससे (यह कहा गया है कि) पराकाष्ठा को प्राप्त ज्ञान के लिये यह सब योग्य है।'

संक्षेप सार—सारांश

२८—इस सब विवेचन से यह सिद्ध होता है कि पर्याय क्रमबद्ध ही होती है, आगे या पीछे नहीं होती है। यह ही सम्यक् अनेकांत है; ऐसा न हो तो अज्ञानी जीव को कर्तापना का भाव कभी भी न छूट कर अकर्तृत्वपना नहीं आयेगा।

पर्याय, आगे-पीछे या असमय में होती है, उसका अर्थ क्या ?

२९—पर्याय का स्वकाल न रहेगा:—पर्याय आगे-पीछे होती है—ऐसा कहने का अर्थ क्या ? यह विचारना चाहिये। जो पर्यायें होनेवाली थीं, वे अन्य द्रव्य के प्रयोग विशेष से नहीं हुईं, तो उनका क्या हुआ ? क्या वे बिना हुए ही अतीत हो गईं या आगे होगीं ? बिना हुए वे अतीत हो गईं—यह कहना बन नहीं सकता, क्योंकि जो वस्तु हुई ही नहीं, वह अतीत कैसे हो सकती है ? आगे होगी, यह कहना भी नहीं बन सकता, क्योंकि ऐसा मानने पर किसी भी पर्याय का स्वकाल न बन सकेगा। यह केवल एक पर्याय का प्रश्न नहीं है, किंतु उसके बाद आनेवाली अनंत पर्यायों का प्रश्न है, क्योंकि किसी एक विविक्षित पर्याय के स्वकाल में न होने से सभी जीवों और पुद्गलों की पर्यायों के स्वकाल का नियम नहीं रहता, इतना ही नहीं किंतु अकाल के आश्रय से जिन पर्यायों का हम बीच में होना नहीं मानते हैं, उनका अभाव होने से सब द्रव्यों की पर्यायें संख्या से कालद्रव्य की पर्यायों के समान है, यह सिद्धांत नष्ट हो जावेगा, सो युक्त नहीं है।

पुरुषार्थ

३०— **प्रश्न:**—कोई ऐसा मानते हैं कि क्रमबद्धपर्याय मानने से पुरुषार्थ समाप्त हो जाता है, क्या यह बात सत्य है ?

उत्तर:—नहीं; यह बात झूठी है, क्योंकि समयसारजी, गाथा ३०८ से ३११ तक की टीका में लिखा हुआ क्रमबद्धपर्याय के सिद्धांत का फल यह है कि अज्ञानी जीव की अनादि काल से पर के कर्तृत्व की मिथ्याबुद्धि मिट जाती है और ज्ञातापना प्रगट होता है, यही सच्चा पुरुषार्थ है।

(आत्म-सम्बोधन, पृष्ठ ८४)

क्रमबद्धपर्याय का सच्चा ज्ञान तभी कहा जाता है, जबकि जीव पराश्रय को छोड़कर, अपनी आत्मा के सन्मुख होकर, अनादि से चलती आई हुई कर्तृत्वबुद्धि का नाश कर, अकर्तृत्वबुद्धि (ज्ञाता-दृष्टापना) प्रगट करे, यही सत्यार्थ पुरुषार्थ है। परपदार्थ की पर्याय को कुछ आगे-पीछे करने का या अपनी पर्याय में आगे-पीछे करने का विकल्प का स्वामी होना, वह तो अज्ञानी का असत्यार्थ पुरुषार्थ है।

'क्रमबद्धपर्याय मानने से पुरुषार्थसहित पाँच समवाय और शिवमार्ग'

३१—यथार्थरूप से क्रमबद्ध मानने से अकर्तापना प्रगट होता है। उसमें पाँच समवाय निम्न प्रकार हैं। (१-२) अपने त्रिकाली स्वभाव के सन्मुख अपनी पर्याय हुई, (इसमें स्वभाव व

पुरुषार्थ—ऐसे दो समवाय आये) (३) इस समय में जो पर्याय हुई, वह उसका स्वकाल था, वह हुई काललब्धि (४) जो पर्याय हुई, वही नियति थी, इसलिये यह हुई नियति। (५) उसी समय दर्शनमोह आदि कर्म का उपशमादि हुआ, वह निमित्त, इसप्रकार पाँच समवाय आये।

३२—श्री समयसार नाटक, सर्वविशुद्धिद्वार, पृष्ठ ३३५ में कहा है—'इन पाँचों को सर्वांगी मानना, वह शिवमार्ग है, और किसी एक को ही मानना, वह पक्षपात होने से मिथ्यामार्ग है।'

अनेकांतरूप पुरुषार्थ

३३—इस विषय में 'वस्तुविज्ञानसार' नाम की पुस्तक में 'पुरुषार्थ' नाम का प्रवचन, पृष्ठ १ से ४६ तक आया है, उसको पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। मिथ्या पुरुषार्थ का अभाव हुआ और सम्यक् पुरुषार्थ का परिणमन हुआ—ऐसा अनेकांत स्वरूप जीव में प्रगट हुआ। यह उसका फल आया।

क्रमबद्धपर्याय के यथार्थ ज्ञान से आत्मा को जानने का पुरुषार्थ

३४—श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रवचनसार की ८०वीं गाथा में कहते हैं कि 'जो जीव अरहंत को द्रव्य से, गुण से और पर्याय से जानता है। उसको अपनी आत्मा को जानने का पुरुषार्थ प्रगट होता है, और उसका मोह अवश्य ही नाश को प्राप्त होता है; अरहंत की ज्ञानपर्याय, अनादि से अनंत काल तक की सर्व पर्यायों को एक ही साथ जानती है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि क्रमबद्धपर्याय का ज्ञान होने से आत्मा को जानने का सच्चा पुरुषार्थ प्रगट होता है। इसलिये जो जीव ऐसा मानता है कि क्रमबद्ध मानने से पुरुषार्थ समाप्त हो जाता है, उसका मन भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य से विरुद्ध है, इसलिये वह अरहंत के मत का नहीं है।

केवलज्ञान के वश सब पर्यायें—ज्ञान-ज्ञेय—परस्पर-निमित्त

३५—'श्री पात्र केशरी स्तोत्र', पृष्ठ ६, श्लोक ६ में भगवान की स्तुति करते हुए कहा है कि **'वशं च भुवनत्रयं'** अर्थात् 'तीनों जगत् भी आपकी आज्ञा के आधीन हैं।' इस पर से सिद्ध होता है कि भगवान के केवलज्ञान के वश तीनों जगत की पर्यायें होती हैं, उसमें आगे-पीछे कुछ भी नहीं होता है।

ज्ञान में ज्ञेय निमित्त—ज्ञेय के लिये ज्ञान निमित्त

३६—कितने ही लोग ऐसा मानते हैं कि केवलज्ञान के लिये सब ज्ञेय तीनों काल की पर्यायों सहित निमित्तकारण है, किंतु तीनों काल की पर्यायों के लिये ज्ञान निमित्तकारण नहीं है, परन्तु यह

मान्यता झूठी है, क्योंकि दोनों में परस्पर निमित्तपना हर समय है; इस विषय में श्री समयसारजी गाथा ३५६ से ३६५ तक की टीका में पृष्ठ ४९७ में लिखा है कि, 'इसप्रकार ज्ञानगुण से परिपूर्ण स्वभाववाला चेतयिता भी, स्वयं पुद्गलादि परद्रव्य के स्वभावरूप परिणमित न होता हुआ और पुद्गलादि परद्रव्य को अपने स्वभावरूप परिणमित न करता हुआ, पुद्गलादि परद्रव्य जिसमें निमित्त है—ऐसे अपने ज्ञानगुण से परिपूर्ण स्वभाव के परिणाम द्वारा उत्पन्न होता हुआ, चेतयिता जिसको निमित्त है—ऐसे अपने (पुद्गलादि के) स्वभाव के परिणाम द्वारा उत्पन्न होते हुये, पुद्गलादि परद्रव्य को अपने (चेतयिता के) स्वभाव से जानता है—ऐसा व्यवहार किया जाता है।' तथा उसीप्रकार दर्शनगुण, चारित्रगुण का भी पर की साथ का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध बताया है।

जिनवर, सर्वगत; सर्व पदार्थ, जिनवरगत

३७—श्री प्रवचनसार, गाथा २६, पृष्ठ २९ में 'जिनवर सर्वगत हैं और जगत के सर्व पदार्थ जिनवरगत हैं' तथा ३६वीं गाथा की टीका में, पृष्ठ ४३ कहा है कि 'इसलिये आत्मा के, द्रव्य जिसका आलंबन है—ऐसे ज्ञानरूप से (परिणमित) और द्रव्यों के, ज्ञान का अवलंबन लेकर ज्ञेयाकाररूप से परिणति अबाधितरूप से तपती है, प्रतापवंत वर्तती है।'

३८—श्री प्रवचनसार, पृष्ठ ४३ पर लिखा है कि नोट—(१) ज्ञान के ज्ञेयभूत द्रव्य आलंबन अर्थात् निमित्त हैं, यदि ज्ञान, ज्ञेय को न जाने तो ज्ञान का ज्ञानत्व क्या रहा? (२) ज्ञेय का ज्ञान में आलम्बन, अर्थात् निमित्त है, यदि ज्ञेय, ज्ञान में ज्ञात न हो तो ज्ञेय का ज्ञेयत्व क्या हुआ?

विपरीत मान्यता

३९—इसलिये जो ऐसा मानते हैं कि ज्ञान, ज्ञेय को यथार्थरूप से जान करके परिणमन करता है, वह सत्य है, परंतु ज्ञान को अवलंबन कर ज्ञेयाकाररूप परिणति नहीं होती; ऐसा माननेवाला, ज्ञान-ज्ञेय का, श्रद्धा-श्रद्धेय का, दर्शन-दृश्य का, अपोहक-अपोह्य आदि का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध से अज्ञात है। उसको स्व-संवेदन ज्ञान कभी नहीं होगा।

प्रश्न—क्रमबद्ध मानने से एकांत मिथ्या नियतिवाद आ जाता है-ऐसा कोई मानते हैं और उसके आधार में गोम्मटसार कर्मकांड ८७९-८८२-८९१ और अमितगति आचार्यकृत पंच संग्रह का आधार देते हैं, क्या यह बात ठीक है?

उत्तर—यह बात झूठ है; जो जीव, पुरुषार्थ आदि का निषेध कर एकांत नियति को मानते

हैं, अर्थात् जो पाँच समवाय में से त्रिकाली स्वभाव, वर्तमान पुरुषार्थ का स्व-सन्मुख झुकाव, काल तथा कर्म की अवस्था, जो इन चार को नहीं मानकर अकेले नियति को मानते हैं, उनके लिये यह गाथायें हैं; इसके विरुद्ध गोम्मटसार की गाथाओं का और अमितगति आचार्य कृत पंच संग्रह का अर्थ करना, वह शास्त्र का विपरीत अर्थ है।

४०—यह बात जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, गुजराती, विक्रम सम्वत् २०१२ में प्रसिद्ध हुई है, उसके दूसरे भाग के पृष्ठ ८४, प्रकरण दसवाँ, मोक्षमार्ग अधिकार में आया है। वहाँ से पढ़ लेना, इसका अनुवाद हिन्दी में 'श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रंथमाला बम्बई' से प्रकाशित हुआ है, इसमें तीसरे भाग में मोक्षमार्ग अधिकार, दसवाँ प्रकरण, पृष्ठ ५९ में देख लेना।

पर्याय का दूसरा अर्थ

४१—पर्याय को परिणाम कहते हैं, यह बात तो आ गई है, यहाँ इसका दूसरा अर्थ करने में आता है, श्री समयसारजी गाथा ७६ में लिखा है कि प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य—ऐसा व्याप्य लक्षणवाला परिणामस्वरूप कार्य कर्म, कर्ता का कार्य है, उसको कार्य कहो, या पर्याय कहो अथवा कर्म कहो—यह सब एक ही बात है। 'प्राप्य' का अर्थ—प्राप्त होने योग्य, जो पर्याय जिस द्रव्य की, जिस काल में होती है, वह प्राप्त होने योग्य ही होती है, दूसरी नहीं होती—ऐसा अनेकांत होने से पर्याय को 'प्राप्य' कहने में आया है।

४२—श्री प्रवचनसार, गाथा १२२ की संस्कृत टीका में पृष्ठ १७२ पर श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि **'जीवेन स्वतंत्रेण स्वाधीनेन शुद्धाऽशुद्धोपादानकारणभूतेन प्राप्यत्वात्क्रिया कर्मेति, मता-समंता'** तथा पृष्ठ १७६ में प्राप्य को व्याप्य और कर्म कारक कहा है तथा श्री प्रवचनसार, श्री अमृतचंद्राचार्यकृत कृत पृष्ठ १५९, गाथा १२२ की टीका में लिखा है कि "जो (जीवमयी) क्रिया है, वह आत्मा के द्वारा स्वतंत्रतया प्राप्य होने से 'कार्य' है।"

सारांश यह हुआ कि कोई भी पर्याय-विकारी हो या अविकारी, वह सब स्वतंत्र है—स्वाधीन है, उसको अक्रमिक कहना आगम-विरुद्ध है, आगम का ऐसा वचन है ही नहीं तथा वह न्याय से भी विरुद्ध ही है।

उसमें यह अनेकांत है:—

(१) पूर्व-उत्तर पर्याय का संतान क्रमबद्ध है और वे आगे-पीछे नहीं होती।

(२) वे अपने स्वरूप से क्रमबद्ध हैं, और पर के स्वरूप से क्रमबद्ध नहीं हैं अर्थात् पर स्वरूप से अक्रमबद्ध हैं—ऐसा समझना।

(३) पूर्व-उत्तर संतानरूप पर्याय क्रमबद्ध है, और एक समय की सर्व गुण की पर्याय एक ही साथ होने से अक्रमबद्ध हैं।

(४) पर्याय क्रमबद्ध है, गुण एक ही साथ होने से अक्रमबद्ध है।

(५) जिसप्रकार विस्तारक्रम में, हर एक प्रदेश क्रमबद्ध अपने-अपने स्थान में है, उसका स्थान आगे-पीछे नहीं होता, उसीप्रकार प्रवाहक्रम में, सर्व पर्यायें क्रमबद्ध अपने-अपने अवसर (काल) में हैं, आगे-पीछे नहीं होती।

(६) पाँच समवाय में से सब पर्यायें अपनी काललब्धि की अपेक्षा स्वकाल में हैं और काललब्धि के सिवाय चार समवाय की अपेक्षा वे (काललब्धिरूप नहीं होने से उसकी अपेक्षा) वे पर्यायें अकालरूप हैं।

पुरुषार्थ आदि पंच समवाय

(७) प्रत्येक पर्याय, पाँच समवाय में से नियति की अपेक्षा 'नियत' है; बाकी के चार समवाय (नियत से इतर होने से) की अपेक्षा से अनियत है, किंतु इसलिये उसका नियतपना (क्रमबद्धपना) का अभाव होकर आगे-पीछे नहीं हो जाते। इसप्रकार इन सब में सम्यक् अनेकांत लागू पड़ता है। कोई पर्याय क्रमबद्ध होती है और कोई पर्याय आगे-पीछे होती है, यह अनेकांत की व्याख्या से विरुद्ध है क्योंकि एक ही भाव का परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना, वह अनेकांत का स्वरूप है। श्री समयसारजी के स्याद्वाद अधिकार के परिशिष्ट, पृष्ठ ५७२ में अनेकांत का ऐसा स्वरूप आया है कि 'जो तत् है, वही अतत् है; जो एक है, वही अनेक है। जो सत् है, वही असत् है। जो नित्य है, वही अनित्य है। इसप्रकार एक वस्तु में वस्तुत्व की उपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना, अनेकांत है।'

पर्याय में क्रम-अक्रम का अनेकांत

४३—जो पर्याय क्रमबद्ध है, वही दूसरी अपेक्षा से अक्रमबद्ध है—ऐसा सिद्ध करना, वह सच्चा अनेकांत है। परंतु कोई पर्याय क्रमबद्ध है और कोई अक्रमबद्ध है—ऐसा अनेकांत करना मिथ्या अनेकांत है।

मात्र कोई पर्याय को अक्रमिक कहने की प्रतिज्ञा करने से वह पर्याय अक्रमिक सिद्ध नहीं हो जाती, इसलिये ऐसा निर्णय करना चाहिये कि हरेक पर्याय क्रमबद्ध है और उसमें ऊपर कहा हुआ अनेकांत लागू पड़ता है।

४४—इसको यदि और अधिक स्पष्टरूप से देखा जाये तो ऐसा ज्ञात होता है कि भूतकाल में पदार्थ में जो-जो पर्यायें हुई थीं; वे सब द्रव्यरूप से वर्तमान पदार्थ में अवस्थित हैं और भविष्य काल में जो-जो पर्यायें होंगी, वे भी द्रव्यरूप वर्तमान पदार्थ में अवस्थित हैं; अतएवं जिस पर्याय के उत्पाद का जो समय होता है, उसी समय में वह पर्याय उत्पन्न होती है और जिस पर्याय के व्यय का जो समय होता है, उसी समय वह विलीन हो जाती है। ऐसी एक भी पर्याय नहीं है, जो द्रव्यरूप से वस्तु में न हो और उत्पन्न हो जाये और ऐसी भी कोई पर्याय नहीं है, जिसका व्यय होने पर द्रव्यरूप से उसका वस्तु में अस्तित्व ही न हो।

नय विभाग

४५—श्री पंचास्तिकाय, गाथा २० की टीका में पण्डित हेमराजजी 'सिद्ध पर्याय' के संबंध में लिखते हैं कि 'उसीप्रकार द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नवीन सिद्ध पर्याय को उपज्य नहीं कहा जा सकता, किंतु शाश्वता सदा जीवद्रव्य में आत्मिक भावरूप सिद्धपर्याय तिष्ठै ही है, संसार पर्याय को नष्ट करके सिद्ध पर्याय नवीन उत्पन्न हुई—ऐसा जो कथन है, सो पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से है।'

इसी गाथा की टीका में श्री अमृतचंद्राचार्यजी ने बाँस का दृष्टांत देकर यह बात सिद्ध की है।

यहाँ इतना विशेष समझना कि जो धर्म, द्रव्य में (उसके गुण और पर्यायों में) किसी अपेक्षा से हो, उसमें सम्यक् अनेकांत लागू पड़ता है, किंतु उसमें जो धर्म न हो, उसमें भी अनेकांत लागू कर देना, वह मिथ्या अनेकांत है।

दृष्टांत:—कालाणु एक प्रदेशी द्रव्य है, इसलिये उसे 'अस्ति' कह सकते हैं, किंतु उसे कथंचित् 'अस्तिकाय' नहीं कह सकते हैं, कारण कि वह दूसरे कालाणुओं के साथ किसी भी प्रकार (बंधरूप) इकट्ठा नहीं हो सकता, इसलिये 'वह कथंचित् अकाय भी है व कथंचित् सकाय भी है'—ऐसा अनेकांत मिथ्या है, किंतु 'कालाणु' अकाय ही है और कभी सकाय नहीं है—ऐसा अनेकांत सम्यक् है। इस पर से यह सिद्धांत घटित होता है कि हरेक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है। कोई पर्याय क्रमबद्ध भी है और आगे-पीछेरूप अक्रमबद्ध भी है—ऐसा अनेकांत मिथ्या है, किंतु पर्याय निश्चित क्रमबद्ध है, आगे-पीछेरूप (अक्रमबद्ध) नहीं है—ऐसा अनेकांत सम्यक् है; भगवान ने ऐसा अनेकांत कहा है। श्री अमृतचंद्राचार्यजी ने श्रीप्रवचनसार, गाथा १४७ में बताया है कि 'पर्यायें पर्यायभूत स्व-व्यतिरेक-व्यक्ति के काल में ही सत् (विद्यमान) होने से, उससे अन्य कालों में असत् (अविद्यमान) ही है।'

स्वकाल में अस्ति-नास्तिरूप अनेकांत

४६—श्री अमृतचंद्राचार्यजी ने समयसार, स्याद्वाद अधिकार, पृष्ठ ५७५ में लिखा है कि '××तब (उस ज्ञानमात्र भाव का) स्वकाल से सत्पना प्रकाशित करता हुआ अनेकांत ही उसे जिलाता है (नष्ट नहीं होने देता)।

४७—×××-तब (उस ज्ञानमात्र का) पर काल से असत् प्रकाशित करता हुआ अनेकांत ही उसे अपना नाश नहीं करने देता।

—इससे सिद्ध हुआ कि सभी द्रव्यों की हरेक पर्याय स्वकाल में ही होती है, अन्य काल में (परकाल में) होती ही नहीं।

अकालमृत्यु

४८—गोम्मटसार जीवकाण्ड, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १८६ में लिखा है कि "जीवों के दो भेद हैं—(१) सोपक्रमायुष्क (२) अनुपक्रमायुष्क। जिनका विष-भक्षणादि निमित्त के द्वारा मरण संभव हो, उसको सोपक्रमायुष्क कहते हैं। जो इससे रहित है, उसको अनुपक्रमायुष्क कहते हैं। जो सोपक्रमायुष्क है, उनके तो उक्त रीति से ही परभव संबंधी आयु का बंध होता है। किंतु अनुपक्रमायुष्क में कुछ भेद है, वह यह है कि अनुपक्रमायुष्कों में जो देव और नारकी हैं, वे अपनी आयु के अंतिम छह महीना शेष रहने पर आयु के बंध करने के लिये योग्य होते हैं। इसमें भी छह महीना के आठ अपकर्ष काल में ही आयु का बंध करते हैं,-दूसरे काल में नहीं। जो भोगभूमिया, मनुष्य या तिर्यंच हैं, वे अपनी आयु के नौ मास शेष रहने पर नौ मास के आठ अपकर्ष काल में ही आयु का बंध करते हैं—दूसरे काल में नहीं। जो भोगभूमिया तिर्यंच हैं, वे अपनी आयु के नौ मास शेष रहने पर नौ मास के आठ अपकर्षों में से किसी भी अपकर्ष में आयु का बंध करते हैं। इसप्रकार इन लेश्याओं के आठ अंश आयु बंध के कारण हैं। जिस अपकर्ष में जैसा जो अंश हो, उसके अनुसार आयु का बंध होता है।"

आयुकर्म के दो स्वभाव

४९—देखिये, आयुकर्म दो प्रकार का है—(१) सोपक्रम, (२) अनुपक्रम। जिस जीव के सोपक्रम आयु है, उसकी मृत्यु के लिये ऐसा नियम है कि उसकी आयु नियम से उदीरणारूप होगी और उदयरूप नहीं होगी। यह भी जीव की निश्चित योग्यता बतलाते हैं कि इतने काल इस जीव के साथ यह शरीर संयोगरूप रहेंगे। उसके अंतिम अंतर्मुहूर्त में आयुकर्म का निषेक उदीरणा के रूप से

होगा, ऐसा उस जीव का और आयुकर्म की उदीरणा का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

आयु के उचित नियम

५०—जो जीव निरुपक्रम आयुष्यवाला हो, उसका आयुकर्म नियम से उदीरणारूप नहीं होगा, इससे सिद्ध हुआ कि जिसको उदीरणारूप आयुकर्म हुआ, वह पर्याय अक्रमिक नहीं हुई, किंतु उसके नियमरूप क्रमबद्ध हुई है क्योंकि उसने उसी क्रम का ही आयुकर्म बाँधा था।

द्वादशानुप्रेक्षा में स्वामिकार्तिकेय ने कहा है कि:—

जं जस्स जम्मि देसे, जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं, जम्मं वा अहव मरणं वा॥३११॥
तं तस्स तम्मि देसे, तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
को सक्कई चालेदुं, इंदो वा अह जिणिंदो वा॥३२२॥
एवं जो णिच्चयदो, जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो, जो संकदि सो हु कुद्दिट्ठी॥३१३॥

५१—अर्थ—जिस जन्म अथवा मरण को जिस जीव के, जिस देश में, जिस विधि से, जिस काल में नियत जिनेन्द्रदेव ने जाना है; उसे उस जीव के, उस देश में, उस विधि से, उस काल में, शक्र अथवा जिनेन्द्रदेव इनमें से कौन चलायमान कर सकता है ? अर्थात् कोई भी चलायमान नहीं कर सकता। इसप्रकार जो निश्चय से सब द्रव्यों और उनकी सब पर्यायों को जानता है, वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है और जो शंका करता है, वह कुदृष्टि (मिथ्यादृष्टि) है।

५२—इसी तथ्य को पद्मपुराण में इन शब्दों में व्यक्त किया है।

यत्प्राप्तव्यं यदा येन, यत्र यावद्यतोऽपि वा।
तत्प्राप्यते तदा तेन, यत्र तावत्ततो ध्रुवम्॥२९-८३॥

जिस जीव के द्वारा, जहाँ पर, जिस काल में, जिस कारण से, जिस परिणाम में जो प्राप्तव्य है; उस जीव के द्वारा, वहाँ पर, उस काल में, उस कारण से, उस परिणाम में वह नियम से प्राप्त किया जाता है।

५३—इससे सिद्ध होता है कि जिस जीव का मरण और जन्म, जिस काल में, जिस विधि से, सर्वज्ञदेव ने देखा है; उसी ही प्रकार होगा। आगे-पीछे नहीं होगा।

आचार्यकल्प स्व० श्री पंडित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में आयुकर्म के विषय में

स्पष्ट कहा है—आगे-पीछे अक्रम-अकाल में किसी की मृत्यु होती है - ऐसा नहीं माना है 'बहुरि आयुकर्म के उदय करि मनुष्यादि पर्यायनिकी स्थिति रहै है। यावत् आयु का उदय रहै, तावत् अनेक रोगादिक कारण मिलौ, शरीरस्यौं सम्बन्ध न छूटै। बहुरि जब आयु का उदय न होय, तब अनेक उपाय कियें भी शरीर स्यौं सम्बन्ध रहै नाहीं, तिस ही काल आत्मा अर शरीर जुदा होय। सहज ही ऐसा आयुकर्म का निमित्त है और कोई उपजावनहारा, क्षपावनहारा, रक्षा करनेवाला है नहीं - ऐसा निश्चय करना।' *(दिल्ली सस्ती ग्रंथमाला से प्रकाशित मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ६१, अध्याय २।)*

'××जातैं आयु पूर्ण भये तौ अनेक उपाय करै है, अनेक सहाई होई तो भी मरन होइ ही होय। एक समयमात्र भी न जीवै। अर यावत् आयु पूरी न होइ, तावत् अनेक कारण मिलौ, सर्वथा (किसी भी प्रकार) मरन न होइ। तातैं उपाय किये मरन मिटता नाहीं। आयु की स्थिति पूर्ण होई ही होई, तातैं मरण भी होइ ही होइ।×××' *(पृष्ठ ८८, अध्याय ३)* लोक-व्यवहार की विषय जो अकालमृत्यु है, वह सर्वज्ञ के ज्ञान में तो सब १०० टका निश्चित व्यवस्थित है। विश्व में जिसकी जो पर्याय, जिस काल में, जिसप्रकार होना नियत थी, उसी काल में जन्म-मरणादि होगा ही होगा। ज्ञेय छहों द्रव्य, जो तीनों काल की अपनी-अपनी पर्यायों का समूह है, उसमें भी अपने-अपने कारणपूर्वक निरंतर उत्पाद-व्यय-ध्रुवपना चालू ही रहता है। किसी को किसी की राह देखनी पड़े - ऐसा नहीं है। सबमें कारण-कार्य अपने से है, पर से नहीं है - ऐसा निर्णय करना, सच्चा अनेकांत है। कार्य के समय निमित्त भी निमित्त के स्थान में होता ही है, किंतु वह निमित्त मात्र, व्यवहारकारण, उपचारकारण ही है। 'उपादान निश्चय जहाँ, तहँ निमित्त (व्यवहार) पर होय।' अतः निमित्त न हो तो कार्य नहीं होगा, निमित्त आकर उपादान की योग्यता (शक्ति) को आगे-पीछे, उलटी-सीधी-अक्रम कर देगा—ऐसा तीन काल में नहीं है। संयोगदृष्टि से दो द्रव्य की एक क्रिया माननेवाला ही पर में कर्तृत्व मानता है और उत्पाद-व्ययरूप पर्याय अक्रमवर्ती भी है - ऐसा संशयवाद का पक्ष करते हैं।

[अकालमृत्यु व्यवहारनय का विषय जरूर है, किंतु उसे अक्रमपर्याय निश्चय से मानी जाए तो जन्म का काल भी अनिश्चित मानना पड़ेगा। एक व्यक्ति का आयु पूर्ण हुआ, किंतु उत्पत्ति के स्थान और नया शरीर धारण करने का समय (-उत्पत्ति के काल) निश्चित नहीं है, अक्रमबद्ध है तो ऐसा माननेवालों को न तो सर्वज्ञ के व्यवस्थित ज्ञान की प्रतीति है, न तो ज्ञेयों की व्यवस्था के क्रम की प्रतीति है, न तो श्रुतज्ञान की ताकत की प्रतीति है; अतः मन में आया, उसका पक्ष लेकर वह सर्वज्ञ को अर्थात् मोक्षतत्त्व को भी अन्यथा मानता है।]

५४—एक जीव का मरण, उसके शरीर के साथ रहने की योग्यता हो, उससे पहले हो जावे—ऐसा अक्रमिकपर्याय मानी जाये तो उस जीव के अगले नये भव के लिये जो आठों कर्म हैं, उनके उदय का और ज्ञान, दर्शन, वीर्यादिक का क्षयोपशम का काल भी आगे-पीछे इतने पहिले आ जावे तो क्या ऐसा मानना न्यायसंगत है ? और जो ऐसा नियम मानने में आवे तो उसकी अनंत काल तक की सर्व पर्यायें पहिले पहिले हो जावेगी, किंतु ऐसा कभी नहीं बन सकता।

५५—**प्रश्न**—कार्तिकेयानुप्रेक्षा और पद्मपुराण के आधार के संबंध में कितनेक लोग ऐसा मानते हैं कि यह गोम्मटसार शास्त्र की गाथा ८८२ से विरुद्ध कथन है, इसलिये कार्तिकेयानुप्रेक्षा और पद्मपुराण की गाथा को सिद्धांतरूप से नहीं माननी चाहिये किंतु कार्य होने के बाद आश्वासन देने के लिये यह गाथा दी है, क्या उनकी यह मान्यता बराबर है ?

उत्तर—नहीं, यह मान्यता सत्य नहीं है, इन गाथाओं में कोई विरोध नहीं है। गोम्मटसार में जो मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी कहा है, वह सिर्फ नियति को ही मानता है, पुरुषार्थ आदि का निषेध करते हैं और जीव को तथा उसमें रहनेवाली सर्वज्ञ शक्ति को नहीं मानते, उनके लिये वह एकांतवाद निरूपक गाथायें हैं।

५६—कार्तिकेयानुप्रेक्षा तथा पद्मपुराण की गाथाओं में आत्मा का और सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार किया है—ऐसे जीव की बात है। सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार किया है—ऐसा तो तब ही कहने में आता है कि जब पर्याय को व्यवस्थित क्रमबद्ध मानकर विभाव व स्वभाव परिणमन में सभी के छहों कारक स्वतंत्र हैं। ऐसा निर्णय करके कर्तापना छोड़ दें और स्वसन्मुख ज्ञाता-दृष्टारूप से आंशिक भी परिणाम हो, इसलिये यह गाथाएँ गोम्मटसार की गाथाओं से परस्पर विरुद्ध नहीं हैं। शास्त्र में किसी भी स्थान पर सिद्धांत न देकर, निश्चित बात न करके आश्वासन देने के लिये ऐसी-ऐसी गाथा देवे, ऐसा कभी भी नहीं बन सकता। सम्यग्दृष्टि, सिद्धांत के विरुद्ध कथन से आश्वासन मिले—ऐसा कभी मानते भी नहीं।

५७—स्वामी कार्तिकेय की गाथाएँ सम्यक् अनेकांत को दिखाने के लिये हैं। क्योंकि उनमें सम्यग्दृष्टि का लक्षण कहा है और गोम्मटसार की गाथा में एकांतवादी गृहीत मिथ्यादृष्टि का लक्षण कहा है। इस पर से यह भी सिद्ध हुआ कि हरेक संसारी जीव का जन्म और मरण अपने-अपने स्वकाल में ही होता है, किंतु आगे-पीछे अक्रम से कभी भी नहीं होता है।

५८—अकालमृत्यु का यह आशय नहीं है कि वह मरण उस समय नहीं होनेवाला था, फिर

भी हो गया; तत्त्वदृष्टि से देखो तो मरण तो ऐसा ही, उसी काल में ही होनेवाला था, लेकिन उदीरणामरण बताने के लिये अपवर्ती आयुवाले को अकालमृत्यु कहा है। [कारण कि सोपक्रम अर्थात् अपवर्ती आयु में उसके समय में उदीरणा होती ही है—फिर उसे अक्रम कहना, वह निश्चयकथन नहीं है, किंतु अपवर्ती आयु की पहचान करानेवाला व्यवहार का कथन है।]

५९—स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की ३२१, ३२२, ३२३ गाथाएँ, देवी-देवताओं की आराधना लोग करते हैं, मरण से बचने आदि अनेक आशा से मान्यता करते हैं, उन मिथ्यात्वी की ऐसी आराधना छुड़ाने के लिये ही ऐसा लिखा है, यह बात गलत है। कारण कि यह तो सम्यग्दृष्टि का स्वरूप कैसा है? यह बताने के लिये और जिनेन्द्रभगवान के ज्ञान की निःसंदेह श्रद्धा व्यक्त करते हैं कि सर्वज्ञ जिनेन्द्र के ज्ञान में जिस जीव का, जिस समय, जिस स्थान में, जैसा-जैसा निश्चित जन्म लेना और मरना भगवान ने देखा है, वैसा ही, उसी समय में होगा, आगे-पीछे अक्रमिक नहीं होगा—ऐसा सम्यग्दृष्टि मानते हैं।

गाथा ३२१ में 'णियदं' शब्द का प्रयोग करने में आया है। 'णियदं' का अर्थ नियत कहो, क्रमनियमित कहो, क्रमबद्ध कहो, एक ही बात है। कोई भी जन्म या मरण अनियत होता ही नहीं—ऐसा इस गाथा में कहा है।

गाथा ३२२, ऐसा बतलाती है कि जिस विधान से, जिस काल में, जो जन्म या मरण होनेवाला है, वही होता ही है, उसको इन्द्र या जिनेन्द्र बदल नहीं सकते।

६०—इससे भी वस्तु का स्वरूप क्रमबद्ध है और केवलज्ञानी ऐसा जानते हैं - यह बात सिद्ध होती है। गाथा ३२३ में 'जोणिच्छयदो' शब्द सूचित करता है कि निश्चयनय से सब जन्म-मरण, अपने-अपने स्वकाल में ही होते हैं, आगे-पीछे नहीं; तो सिद्ध हुआ कि अकालमृत्यु भी निश्चयनय से स्वकाल में होती है, परन्तु व्यवहारनय से आयुकर्म की उदीरणारूप स्थिति का ज्ञान कराने के लिये उसको 'अकालमृत्यु' कहते हैं। भगवान के केवलज्ञान में जिसका जन्म या मरण, जिस विधान से, अर्थात् जिस निमित्त से जिस काल में देखा है; उस ही काल में नियतरूप से होता है, अर्थात् कभी भी अनियतरूप से नहीं होता।

(२) काल का यह विधान किसी भी चेतन या अचेतन पदार्थ फेरने को समर्थ नहीं।

(३) सर्व द्रव्यों की सर्व पर्यायों का यह निश्चयस्वरूप है; उसको निश्चयस्वरूप कहो, क्रमबद्ध कहो—एक ही बात है। शुद्ध सम्यग्दृष्टि ऐसा जानते हैं और जो इसमें शंका करते हैं, वे

सब मिथ्यादृष्टि हैं—ऐसा अर्थ स्पष्ट शब्दों में निकलता है; उसको किसी झूठी दलील से उड़ा देना—यह सर्वज्ञ का और सर्वज्ञ के ज्ञान का बड़ा अनादर है। ये गाथायें, अकालमृत्यु व्यवहारनय का कथन है, निश्चयनय का कथन नहीं है—ऐसा बताती हैं। अकालमृत्यु का सिद्धांत व्यवहारनय का है, अर्थात् उपचारमात्र है; और जो क्रमबद्ध के सिद्धांत का खंडन करते हैं, वे निश्चयनय व व्यवहारनय के कथन का क्या तात्पर्य है—वह बिलकुल नहीं समझते। ऐसा सूक्ष्म भेद जिसके ज्ञान में नहीं आता उनको सच्चा भेदज्ञान कभी नहीं हो सकता।

६१—पद्मपुराण की गाथा में से कोई ऐसा तात्पर्य निकालते हैं कि जब तक निमित्त-उपादान, अंतरंग-बहिरंग सब कारण नहीं बनते, तब तक कोई कार्य नहीं बनता, तो उनकी यह मान्यता गलत है। किस समय में कार्य नहीं होता? हर समय में अपना स्व-उचित कार्य होता ही है, नहीं होता—ऐसा बनता ही नहीं। निमित्त भी उस समय होता ही है; निमित्त न मिले, तब तक कार्य नहीं होता—ऐसे कथन को वस्तुस्वरूप मान लेना गलत है। निमित्तकारण को नहीं माननेवाले के लिये (निमित्तकारण संबंधी अज्ञान मिटाने के लिये) ऐसा हेतु बताना दूसरी बात है और उसको वस्तुस्वरूप मान लेना दूसरी बात है। ऐसा सूक्ष्म भेद, जिसके ज्ञान में नहीं आता, उसको कभी सच्चा भेदविज्ञान नहीं हो सकता।

६२—अज्ञानी तो पाँच समवाय कारणों में से एक नियति को ही मानते हैं। सच्चा जैन धर्मी पाँचों समवायों को ही मानता है। सिर्फ एक को कभी नहीं मानता। और अंतरंग कारण की जब योग्यता हो, तब बहिरंग निमित्तकारण नहीं होते हैं—ऐसी मान्यता गलत है।

हर समय उचित उपादान व उचित निमित्त का मेल

६३—अनादि से अनंत काल तक हर समय में पर्याय होती है, उस पर्याय के लिये प्रत्येक समय में उपादान कारण और निमित्तकारण दोनों होते ही हैं; ऐसी किस समय की उत्पाद-व्ययरूप पर्याय है कि जिसके लिये निमित्त न हो? वस्तु का स्वरूप तो ऐसा ही है हर समय निमित्त उपादान और उचित निमित्त होते ही हैं। श्री प्रवचनसार गाथा २३९ की टीका में लिखा है कि हर एक द्रव्य की भूत, वर्तमान, भावी स्वोचित पर्याय होती है। और आत्मा का स्वभाव तीनों काल की स्वोचित पर्यायों सहित समस्त द्रव्यों को जानने का है, किसी की भी अनिश्चित पर्याय होती है - ऐसा मानना गलत है। सर्व द्रव्यों की सब पर्यायें हर समय में स्व-उचित ही होती हैं। और उनके लिए उचित बहिरंग साधनों की सन्निधि हर समय में हरेक पर्याय होती है। ऐसा प्रवचनसार की ९५ वीं गाथा में बताया है।

६४—प्रत्येक द्रव्य की पर्याय स्व-उचित ही होती है, और उसके स्व-उचित ही निमित्त होता है, इसलिये शास्त्रों में अंतरंग और बहिरंग दोनों कारण उचितरूप से हरेक समय में होते हैं—ऐसा कहा है। किसी भी अंतरंग कारण को बहिरंग कारण की राह देखनी पड़े - ऐसा कभी नहीं है। उपादान के कार्य में निमित्त उपस्थित नहीं है—ऐसा माननेवाला भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य और श्री अमृतचंद्राचार्यजी का अनुयायी नहीं है।

जो स्वयं उदीरणा के योग्य हो उसकी ही उदीरणा होती है

६५—श्री दीपचंदजी कृत भावदीपिका, पृष्ठ २२३ में उदीरणा मरण के संबंध में लिखा है कि 'बहुरि खान-पानादिक न मिलने थकी, वा रोगादिक होते औषधादि प्रतिकारनिके न मिलने थकी वा अन्यथा मिलने थकी, वा अन्यथा क्रिया वा प्रकृति-विरुद्ध खानपानादि थकी, वा विषादिक खाने थकी, वा शस्त्रादिक के घात थकी वा जल-अग्न्यादिक के संबंध थकी इत्यादि अनेक घात के कारण पदार्थनके संबंध होते वा दृष्टिगोचर होते वा सुमिरण होते आयुकर्म की उदीरणा होय मरण को प्राप्त होय है, जातैं इन पदार्थनका संबंधादि होते वा न होते जीव के वैसे ही उदीरणा योग्य भाव होय है, तहाँ आयुकर्म की उदीरणा होय है अर जहाँ नाना प्रकार घात के कारण मिलते वा घात ही तैं जीव के आयुकर्म की उदीरणा होनेयोग्य भाव न हो तो उदीरणा न हो है, तहाँ अनेक घातादिक होते भी मरण न होय है।'

उदीरणा भी क्रमनियमित ही है, अक्रम नहीं है।

६६—देखिय:—जीव में उदीरणायोग्य भाव हुए तो उदीरणा मरण होता है और उदीरणा होनेयोग्य भाव न हो तो उदीरणा नहीं होती। इसलिये जो मरण, उदीरणारूप हुआ, वह उस जीव की उस समय की योग्यता के कारण हुआ है, वह क्रमबद्ध ही हुआ है, आगे या पीछे नहीं हुआ है।

६७—भावपाहुड़, गाथा २४-२५-२६ में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यह विषय लिया है और वहाँ उदीरणामरण को अपमृत्यु कहा है।

६८—तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय २, सूत्र ५३ में अनपवर्त आयु किसको होती है ?—यह बताया है, परन्तु अकालमरण की कोई बात मूल सूत्र में नहीं है। टीकाकार श्री पूज्यपाद आचार्य ने उसकी टीका में से अपवर्त आयु निकाला है और तत्त्वार्थराजवार्तिक, पृष्ठ १३८, वार्तिक ५ में लिखा है कि 'अर अपवर्तन करनेयोग्य है आयु तिनके ते ये अपर्त्यायुष है।'

६९—देखिये, यहाँ पर भी गोम्मटसार की तरह सोपक्रम आयु को अपवर्तन आयु के नाम

से कहा है, उस आयु की योग्यता भी अपवर्तन होनेयोग्य है; इसलिये होती है। वह भी जीव के उदीरणायोग्य भाव हुए, तब आयुकर्म की उदीरणा अपनी योग्यता से स्वयं होती है; इसप्रकार दोनों का परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव असद्भूतव्यवहारनय से है, किंतु कर्म की उदीरणा ने जीव में कुछ किया है और जीव का उदीरणारूप भाव हुआ, उससे वास्तव में कर्म की उदीरणा हुई—ऐसा मानना, वह दो द्रव्यों की एकताबुद्धि है, उसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने दो-क्रियावादी कहा है।

निमित्त, उपादान में गुण-दोष करने में असमर्थ ही है

७०—समयसार की गाथा १०८ में लिखा है कि निमित्त, उपादान में कुछ भी गुण-दोष उत्पन्न नहीं कर सकते, किंतु निमित्त से गुण-दोष उत्पन्न हुआ, वह निमित्त का ज्ञान कराने के लिये उपचारमात्र कथन है। ऐसा स्पष्ट कथन करने पर भी जो कोई ऐसा मान लेवे कि निमित्त के कारण उपादान के कार्य में कुछ लाभ या नुकसान वास्तव में होता है तो वह जिनमत से बाहर है।

हेतु-हेतुमत भाव

७१—इस संबंध में समयसार, गाथा १०८ की टीका में जयसेनाचार्य कहते हैं कि "यहाँ शिष्य ने शंका किया है कि आपने इस बात का व्याख्यान बारम्बार किया है कि 'निश्चय करके यह आत्मा, द्रव्यकर्मों को नहीं करता है, इस कथन से ही द्वि-क्रियावादी का निराकरण सिद्ध होता है, फिर भी इसी अर्थ को दृढ़ करना पिष्टपेषण मात्र है। इसके समाधान में आचार्य कहते हैं कि ऐसा नहीं है—हेतुभाव और हेतुमद्भाव का व्याख्यान बतलाने के लिये ऐसा करने में कोई दोष नहीं है क्योंकि यह आत्मा, द्रव्यकर्मों का निश्चय से कर्ता नहीं है, यह तो हेतु है; इसी हेतु से द्वि-क्रियावादी का निराकरण सिद्ध होता है। यह हेतुमद भाव है ऐसा जानना चाहिये।"

सर्वार्थसिद्धि (विरचित श्री जगरूप सहाय) अध्याय २, पृष्ठ १३२ में लिखते हैं कि **'बाह्यस्योपघात-निमित्तस्य विषशस्त्रादेः सति-सन्निधाने ह्रस्वं भवतीत्यपवर्त्यम्। अपवर्त्यमापुयेषांते इमे अपवर्त्तायुषः। न अपवर्त्तायुषः अनपवर्त्यायुषः।'**

७२—इस टीका में बाह्य उपघात का निमित्त, विष-शस्त्रादि की निकटता होने पर जो आयु का ह्रास होवे, वे अपवर्त्य हैं। यहाँ पर भी अपवर्त्य कहने से अपवर्त होने की योग्यता धराते हैं—ऐसा कहा है।

७३—यहाँ पर भी दो प्रकार का आयुष्य कहा है—एक उदीरणा योग्य, जिसे अपवर्त्य कहा है और जिसको गोम्मटसार में सोपक्रम कहा है, उसको यहाँ अपवर्त्य कहा है, दोनों शब्द यह

बतलाते हैं कि आयु में दो प्रकार की योग्यता होती है। जिसने अपवर्त्य आयु का बंध किया है, उसके नियम से आयुकर्म की उदीरणा अपनी योग्यता से होती है।

७४—दूसरी बात यह सिद्ध होती है कि सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थराजवार्तिक में निमित्त के लिये 'निमित्तस्य सती सन्निधाने'—ऐसा शब्द दोनों जगह लिखने में आया है। यह शब्द बड़ा उपयोगी है, ये शब्द बताते हैं कि निमित्त, उपादान का कुछ कार्य नहीं करते, किंतु वे स्वयं उपस्थित होते हैं यह बताने के लिये 'सन्निधान' शब्द लिखने में आया है।

७५—श्री प्रवचनसार में श्री अमृतचंद्राचार्यजी गाथा ९५, पृष्ठ ११४ पर लिखते हैं कि '**तथा द्रव्यमपि समुपात्तप्राक्तनावस्थं समुचित बहिरंग साधन-सन्निधिसद्भावे**'—इसका अर्थ—उसीप्रकार जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है - ऐसा द्रव्य भी, जो कि उचित बहिरंग साधनों के सन्निध्य (निकटता-हाजरी) के सद्भाव में अनेक प्रकार की बहुत-सी अवस्थाएँ करता है, उसे सन्निधान कहो, सन्निधि कहो, दोनों एक ही बात है, इसका अर्थ निकटता (हाजरी) है।

७६—तत्त्वार्थसूत्र, पर्याय का ज्ञान करानेवाला शास्त्र है, उसमें और प्रवचनसार—इन दोनों में अर्थात् पूज्यपाद आचार्य ने, भट्ट अकलंकदेव ने और अमृतचंद्राचार्य—इन तीनों ने निमित्त के लिए 'सन्निधान' शब्द का प्रयोग करके स्पष्टरूप से ऐसा सूचित किया है कि कार्य होने के समय में निमित्त होता है, यह बात सत्य है, किंतु उसकी मात्र उपस्थिति, सन्निधि, निकटता, हाजरी होती है, उपादान में निमित्त कुछ करता है—ऐसी बात तत्त्वस्वरूप में नहीं है। श्री बनारसीदासजी, अपने उपादान-निमित्त के दोहे में लिखते हैं कि-

उपादान निजगुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान परमाण-विधि, विरला बूझे कोय॥४॥

७७—यहाँ पर 'निमित्त पर होय'—इस शब्द का प्रयोग हुआ है। निमित्त होय, ऐसा कहो, उसकी हाजरी कहो, निकटता कहो, उपस्थिति कहो, सन्निधि कहो, उसका सान्निध्य कहो, उसका सान्निधान कहो—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिये इस दोहे में कहा है कि सम्यग्दृष्टि भेदज्ञानी विरला ही होता है और वह तो निमित्त होता है - ऐसा मानता है। और इससे यह फलित हुआ कि जो मिथ्यादृष्टि होता है, वह निमित्त होता है, इतना शब्द सुनकर संतुष्ट नहीं होते हैं। निमित्त, कुछ उपादान में गुण-दोषरूप कार्य करते हैं—ऐसा मानने का दुराग्रह सेवन करते हैं। यहाँ यह साबित किया है कि 'जहाँ पर उपादान, कार्यरूप परिणमित होता है, वहाँ पर परपदार्थ स्वयमेव निमित्तरूप से रहते ही हैं, उनको मिलाना नहीं पड़ता।'

७८—श्री बनारसीदासजी, ५वें दोहे में कहते हैं कि—

उपादान बल जहँ, तहाँ नहिं निमित्त को दाव।
एक चक्र सो रथ चले, रवि को यहै स्वभाव॥५॥

अर्थः—जहाँ तहाँ उपादान का बल है, वहाँ निमित्त का दाव नहीं लगता क्योंकि सूर्य का यही स्वभाव है कि उसका रथ, एक चक्र से चलता है॥५॥

यहाँ पर उक्त कथन द्वारा यह दिखलाया गया कि उपादान, स्वयं कार्यरूप परिणत होता है। कार्यरूप होने में निमित्त का कोई कर्ता के रूप में स्थान नहीं है। वह कार्य होने में निमित्त है, इतने मात्र से यह नहीं कहा जा सकता है कि उससे कार्य होता है, क्योंकि ऐसा मानने पर वस्तुव्यवस्था का कोई नियम नहीं रहता। तथा फिर छठवें दोहे में कहते हैं कि:—

सधै वस्तु असहाय जहाँ, तहाँ निमित्त है कौन।
ज्यों जहाज परवाह में, तिरै सहज बिन पौन॥६॥

अर्थः—जिसप्रकार पानी के प्रवाह में जहाज बिना पवन के सहज चलता है; उसीप्रकार जहाँ प्रत्येक कार्य की, दूसरे की सहायता के बिना सिद्धि होती है, वहाँ निमित्त कौन होता है॥६॥

७९—यहाँ पर वस्तु का असहाय स्वभाव बतलाया है। उत्पाद और व्यय—यह पानी का प्रवाह है तथा वस्तु यह जहाज है। जिसप्रकार पानी के प्रवाह में जहाज स्वभाव से गमन करता है; उसीप्रकार वस्तु, अपनी योग्यता से सदृशपने ध्रुव रहकर, उत्पाद-व्ययरूप प्रवाह में बहती है, अन्य की सहायता मिले तो यह परिणमन हो और अन्य की सहायता न मिले तो परिणमन न हो - ऐसा नहीं है। इसलिये वस्तुस्वभाव की दृष्टि से प्रत्येक परिणमन काल में ही होता है - ऐसा समझना चाहिये।

८०—पंडित बनारसीदासजी ने उपादान-निमित्त की चिट्ठी में लिखा है कि ज्ञान की पर्याय के लिये ज्ञान उपादान और चारित्र निमित्त है। उसमें बताया है कि 'अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्र के आधीन, न चारित्र, ज्ञान के आधीन। दोऊ असहायरूप यह तौ मर्यादा बाँध दी।'

८१—यहाँ पर भी स्पष्ट लिखा है कि एक द्रव्य की, एक गुण की पर्याय, दूसरे गुण के लिए निमित्त होती है तो भी निमित्त के आधीन, उपादान की पर्याय नहीं है तो फिर जहाँ पर एक द्रव्य की पर्याय, दूसरे द्रव्य की पर्याय के लिये निमित्त है तो वह किसप्रकार उपादान की पर्याय को अपने आधीन करेगा? कभी नहीं करेगा।

८२—पंडित बनारसीदासजी ने समयसार नाटक, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, पृष्ठ ३७९ के ५२वें दोहे में कहा है कि—

करम करै फल भोगवै, जीव अज्ञानी कोई।
यहु कथनी विवहार की, वस्तु स्वरूप न होई ॥५२॥

यह दोहा ऐसा सूचित करता है कि निमित्त से उपादान में कार्य हुआ—ऐसा कहने की व्यवहार रीति, निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है, परन्तु निमित्त, उपादान में कुछ भी विलक्षणता लावे—ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है।

८३—इससे सिद्ध होता है कि सर्व मृत्यु, स्वकाल मृत्यु ही हैं, परंतु सोपक्रम आयु बतलाने के लिए उदीरणा-मरण को स्वकाल-मृत्यु होने पर भी, सोपक्रम आयु का (उदीरणारूप आयु का) ज्ञान कराने के लिए उसको अकालमृत्यु कहते हैं। कितने ही लोग अकेला अनुपक्रम आयु मानते हैं, कितने ही तीन प्रकार की आयु मानते हैं अर्थात् किसी की आयु ऐसी है जो अनुपक्रम हो, किसी की सोपक्रम हो और किसी की आयु वृद्धिरूप हो जाती है। किंतु जैनमतानुसार दो प्रकार की आयु मानना सत्य है और इससे विपरीत प्रकार से मानना असत्य है—यह बतलाने के लिए 'मूल आराधना' में अध्याय ६, पृष्ठ ९६४ में लिखा है कि 'चार असत्य वचनों में पहिला असत्य वचन इसप्रकार समझना चाहिये—अस्तित्वरूप पदार्थ का निषेध करना, यह प्रथम असत्य वचन का भेद है। जैसे, मनुष्य को अकालमृत्यु नहीं है, आयुष्य की स्थिति को यहाँ काल कहना चाहिये, इस काल से जो अन्य काल, उसको अकाल कहते हैं।'

८४—**शंका**—मनुष्य को अकाल में मृत्यु नहीं है, यह कहना सत्य ही है क्योंकि भोगभूमि के मनुष्यों का आयुष्य विष-शस्त्रादि से कम होता ही नहीं; अतः उनको अकालमरण नहीं है - यह कहना योग्य ही है ?

उत्तर—'नर' शब्द सामान्यवाची होने से संपूर्ण मनुष्यों का वाचक है, इसलिये अकाल-मरण नहीं है—ऐसा कहना अयोग्य ही है। कितने कर्मभूमि के मनुष्यों में अकालमृत्यु है, उसका यहाँ निषेध किया है। अतः अकाल में मनुष्यों को मरण नहीं है, यह कहना सत् पदार्थ का विद्यमान पदार्थ का निषेध करनेवाला होने से अवश्य असत्य ही है।

८५—इसमें अकाल का अर्थ क्या लिखा है—यह समझने की जरूरत है। 'आयुष्य के स्थिति काल को यहाँ काल कहना चाहिये, इस काल से जो अन्य काल है, उसे अकाल कहते हैं।'

यहाँ उदीरणा में (आयु की उदीरणा न कहकर) अकाल कहा है, परंतु इस कारण से उस जीव की मृत्यु उसी काल में न होनेवाली थी और हो गई—ऐसी बात नहीं है। वही काल में ही मृत्यु होनेवाली थी।

मोक्ष के विषय में काल और अकालनय

८६—पर्याय को अपने स्वकाल में होने पर भी, उस ही पर्याय को जहाँ-जहाँ दूसरी अपेक्षा लागू पड़े, तहाँ-तहाँ उसको अकाल से हुआ—ऐसा अनेकांत भी आगम में आता है। इस विषय में श्री प्रवचनसार में नय का परिशिष्ट आया है, उसमें साधक को (सम्यग्दृष्टि जीवों को) लागू पड़नेवाला ४७ नयों का कथन है।

८७—जिस जीव को मोक्ष होता है, उसे एक अपेक्षा से कालनय लागू पड़ता है तथा उसी न उसी मोक्ष को दूसरी अपेक्षा से अकालनय लागू पड़ता है—ऐसा नय नं० ३०, ३१ में कहने में आया है।

८८—नय नं० ३० में लिखा है कि '(वह) आत्मद्रव्य, कालनय से जिसकी सिद्धि समय पर आधार रखती है - ऐसा है, गरमी के दिनों में पकनेवाले आम्रफल की भाँति (कालनय से आत्मद्रव्य की सिद्धि समय पर आधार रखती है, गरमी के दिनों में पकनेवाले आम की भाँति।)'

८९—प्रवचनसारजी में नय नं० ३१ में लिखा है 'कि (वह) आत्मद्रव्य, अकालनय से सिद्धि समय पर आधार नहीं रखती, कृत्रिम गरमी से पकाये गये आम्रफल की भाँति।'

९०—इस विषय में श्री समयसार कलश टीका, राजमल्लजी कृत पृष्ठ १० में लिखा है कि 'तिहि मांहे अभव्य राशि जीव त्रिकाल ही मोक्ष जावा कौ अधिकारी नहीं, भव्य जीव मांहे केता एक जीव मोक्ष जावा योग्य छै। तिहिकौ मोक्ष पहुँची याकौ काल परिमाण छै। ब्यौरो—यह जीव इतना काल वीत्या मोक्ष जासै इसौ न्यौधु (नोंध) केवलज्ञान मांहे छै॥' इसप्रकार सिद्ध होनेवाले सब जीवों का निश्चित काल-परिमाण नय नं० ३० के अनुसार है।

९१—जो-जो जीव मोक्ष पाते हैं, उनको जुदी-जुदी अपेक्षा से कालनय तथा अकालनय लागू पड़ते हैं क्योंकि, (१) साधक जीव को मोक्ष अपने-अपने काल में ही होता है। कुछ आगे-पीछे नहीं होता—इस संबंधी ज्ञान कराने के लिए ३०वाँ नय लागू पड़ता है।

(२) उस जीव को स्वसन्मुख का तीव्र पुरुषार्थ होने से संसार की स्थिति टूट जाती है और कर्म की स्थिति भी टूट जाती है। इसलिये मोक्ष शीघ्र हो गया—ऐसा कथन के योग्य, साधक जीव में एक धर्म है, उसे ३१वाँ अकालनय लागू पड़ता है; इसप्रकार मोक्षपर्यायरूप वस्तु में वस्तुत्व निपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों को प्रकाशित करनेवाला अनेकांत है।

इन दोनों में आम्रफल का दृष्टांत दिया है, किंतु यह बात भूलनी नहीं चाहिये कि दृष्टांत हमेशा एकदेशी ही होता है, सर्वांशी नहीं होता है।

इस विषय में (प्रवचनसार की ४७ नयों का वर्णन ऊपर प्रवचनवाला)—नय प्रज्ञापन शास्त्र, गुजराती, पृष्ठ २०३ से २१२ ताक का विवेचन पढ़िये।

९२—शास्त्र का अर्थ करने की रीति मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३६९ में लिखी है कि, **प्रश्नः**—जो ऐसे हैं तो जिनमार्ग विषै दोऊ नयनि का ग्रहण करना कह्या है, सो कैसे ?

ताका **समाधान**—जिनमार्ग विषै कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, ताकौ तौ 'सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना। बहुरि कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, ताकौ 'ऐसे है नांहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है'—ऐसा जानना। इसप्रकार जानने का नाम ही दोऊ नयनी का ग्रहण है, बहुरि दोऊ नयनी के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानि ऐसे भी है, और ऐसे भी है ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तने करि तो दोऊ नयनि का ग्रहण करना कह्या है नाहीं।'

९३—इससे सिद्ध हुआ कि जिसको अकालमृत्यु कहने में आता है, वह निश्चय से ऐसा नहीं है, निमित्त का ज्ञान कराने के लिये उपचार से कहने में आया है, अगर जो उसका अर्थ निश्चयनय की तरह करने में आवें तो वह भ्रमरूप अर्थ हो जाता है। इस विषय में श्री अमृतचंद्राचार्यजी, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, पृष्ठ ५, गाथा ६ और ७ में लिखते हैं कि—

९४— **अबुधस्य बोधनार्थं, मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।**
व्यवहारमेव केवलमवैति, यस्तस्य देशना नास्ति॥६॥
माणवक एव सिंहो, यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य॥७॥

अर्थः—मुनिराज, अज्ञानी के समझावने कौ असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताकौ उपदेशै है, जो केवल व्यवहार ही कौ जाने हैं, ताकौ उपदेश देना योग्य नाहीं है। बहुरि जैसे जो साँचा सिंह कौ न जाने, ताकै बिलाव ही सिंह है, तैसे जो निश्चयकौं न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपना को प्राप्त हो है।

९५—अकालमृत्यु सिद्ध करने के लिये शास्त्र में कच्चे आम का दृष्टांत दिया है, वह भी व्यवहार का कथन है, इसलिये उसका अर्थ 'ऐसा नहीं है', निमित्तादि का ज्ञान कराने के लिये कहा है – ऐसा समझना।

९६—निमित्त का आश्रय करनेवाले ऐसा कहते हैं कि हम कार्य आगे-पीछे हो – ऐसा हम कर सकते हैं।

उदाहरणार्थ:—जो आम का फल १५ दिन बाद पकनेवाला होगा, उसे हम प्रयत्न विशेष से १५ दिन पहले पका सकते हैं या जो फल चार दिन बाद नष्ट होनेवाला है, उसे हम ठण्डी मशीन में रखकर लम्बे समय तक रक्षित रख सकते हैं। यही हमारी या अन्य निमित्तों की सार्थकता है। परंतु जब हम इस कथन पर विचार करते हैं तो इसमें रंचमात्र भी सार प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जिसप्रकार तिर्यक् प्रचयरूप से अवस्थित द्रव्य का एक प्रदेश, उसी के अन्य प्रदेशोंरूप नहीं हो सकता; एक गुण, अन्य गुणरूप नहीं हो सकता अथवा एक द्रव्य के प्रदेश, अन्य द्रव्य के प्रदेशोंरूप नहीं हो सकते या एक द्रव्य के गुण, अन्य द्रव्य के गुणरूप नहीं हो सकते; उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य की ऊर्ध्वप्रचयरूप से अवस्थित पर्यायों में भी परिवर्तन होना संभव नहीं है। प्रत्येक द्रव्य की द्रव्यपर्यायें व गुणपर्यायें तुल्य हैं, उनमें से जिस पर्याय का जो स्वकाल है, उसके प्राप्त होने पर ही वह पर्याय होती है।

९७—यद्यपि ऊपरी दृष्टि से विचार करने पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जो आम्रफल १५ दिन के बाद पकनेवाला था, उसे हमने प्रयोग-विशेष से १५ दिन पहले पका लिया। पर विचार तो कीजिये कि इन १५ दिनों के भीतर जो आम्रफल की पर्यायें होनेवाली थीं, जो कि आपके प्रयोग-विशेष से नहीं हुई तो उनका क्या हुआ ? वे बिना हुए ही अतीत हो गई या आगे होगी ? बिना हुए वे अतीत हो गई—यह कहना तो संभव नहीं है, क्योंकि जो वस्तु हुई ही नहीं, वह अतीत कैसे हो सकती है ? वह आगे होगी, यह कहना भी संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर किसी भी पर्याय का स्वकाल नहीं बन सकेगा। यह केवल एक पर्याय का प्रश्न नहीं है, किंतु उसके बाद आनेवाली अनंत पर्यायों का यह प्रश्न है क्योंकि किसी भी एक विवक्षित पर्याय के स्वकाल नहीं रहता। इतना ही नहीं, किंतु अकालपाक आदि के आश्रय से जिन पर्यायों का हम बीच में होना मान लेते हैं, उनका अभाव हो जाने से सब द्रव्यों की पर्यायें कालद्रव्य की पर्यायों के समान है, यह व्यवस्था नष्ट हो जाती है, जो कि युक्त नहीं है। जब यह स्पष्ट है कि प्रत्येक कार्य का उत्पाद, अपने-अपने उपादान के ही अनुसार होता है—ऐसी अवस्था में इन निमित्तों के अनुसार भी आगे-पीछे कार्यों का परिणमन मानना नितांत असंगत है।

९८—इसी सत्य को ध्यान में रखकर आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने समयसार में कहा है कि—

अण्ण दविएण अण्ण दव्वस्स ण कीरए गुणुप्पा ओ।
तम्हा उसव्व दव्वा उप्पज्जंते सहावेण॥३७२॥

अर्थः—अन्य द्रव्य के द्वारा (निमित्त द्वारा) अन्य द्रव्य के गुण (विशेषता) का उत्पाद नहीं किया जा सकता; इसलिये सभी द्रव्य, अपने-अपने स्वभाव से उत्पन्न होते हैं ॥३७२॥

९९—श्री समयसार की १०८ गाथा में भी कहते हैं कि निमित्त से उपादान के कार्य में कुछ गुण-दोष हुआ, यह कथन सत्य नहीं है, उपचारमात्र है। उपचार, वस्तु का स्वरूप नहीं है, परंतु निमित्त का ज्ञान कराता है।

कथन करने की दो रीतियाँ है—(१) उपादान की अपेक्षा से (२) निमित्त की अपेक्षा से। उपादान की अपेक्षा को निश्चय का कथन कहते हैं और निमित्त की अपेक्षा को व्यवहार कथन कहते हैं।

१००—इसलिये जब उपादान की अपेक्षा से कथन किया जाता है, तब प्रत्येक कार्य, स्वकाल में ही होता है—ऐसा सिद्धांत होने से इस दृष्टि में अकालमरण और अकालपाक जैसी वस्तु को कोई स्थान नहीं मिलता है और जब निमित्त का ज्ञान कराना हो, तब अकालमृत्यु और अकालपाक जैसे शब्दों का प्रयोग करने में आता है। यह निश्चय-व्यवहार का स्वरूप बताने की शैली है, परंतु इससे कहीं वस्तुस्वरूप दो प्रकार का नहीं हो जाता। निश्चय से जो कथन करने में आता है, वह वस्तुस्वरूप है और निमित्त से जो कथन करने में आता है, वह वस्तुस्वरूप तो नहीं है, किंतु वह निमित्त का ज्ञान कराता है।

देखो, नयचक्र गाथा २८८ में कहा है कि 'व्यवहार को निश्चय की सिद्धि का हेतु जानो।'

१०१—भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य को तो सातिशय विवेक ज्योति, अर्थात् परम भेदविज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हुआ था; वे जीवों की अज्ञानता को मिटाने के लिये कहते हैं कि 'एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता।' यह कथन जीवों की अनादि काल से परपदार्थों की जो कर्ताबुद्धि चली आती है, यह मिटाने के लिये कहा है तथा अज्ञानी, राग को आत्मा मानते हैं, यह अज्ञानता मिटाने के लिये राग की कर्ताबुद्धि छुड़ाना चाहते हैं, परंतु जिसको यह वचन रुचिकर नहीं लगता वह जीव निश्चयनय और व्यवहारनय को, उपादान-निमित्त का समानरूप से आश्रय करना चाहते हैं, और जिनको भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य का कथन रुचता है, उसको परपदार्थ की और राग की एकताबुद्धि छूट जाती है क्योंकि वे श्री समयसार की गाथा ११ का कथनानुसार निश्चयनय को भूतार्थ होने से आश्रय करनेयोग्य और व्यवहारनय को (राग, पर का कर्ता, निमित्त, संयोग, भेद आदि को) आश्रय करनेयोग्य नहीं मानते हैं। [व्यवहारनय का विषय जानने के लिये आश्रय योग्य

कहा है, किंतु धर्म करने के लिये आश्रय करनेयोग्य नहीं है।] [समयसार गाथा ११ के भावार्थ में पण्डितजी श्री जयचन्द्रजी ने कहा है कि '... किंतु उसका (व्यवहारनय के आश्रय का) फल संसार ही है।...']

१०२—पण्डित टोडरमलजी, श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३६६ में कहते हैं कि 'बहुरि निश्चय व्यवहार दोऊनिकूं उपादेय मानै है सो भी भ्रम है, जातै निश्चय व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध लिए है।'

१०३—ज्ञान व ज्ञेय का प्रति समय परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध होने से दो प्रश्न उठते हैं—

[१] जिस जीव को सोपक्रम आयु है, उसके आयुकर्म की उदीरणा होती है, वह उदीरणा अपने स्वकाल में होती है या आगे-पीछे होती है ?

[२] उस जीव को आयुकर्म की उदीरणा कब होगी, यह केवलज्ञानी स्वयं जानते हैं या नहीं ?

[१] पहले प्रश्न का उत्तर—उदीरणा, यह पुद्गलद्रव्य की पर्याय है। सब पर्यायें अपने-अपने काल में होती हैं और आयुकर्म की उदीरणा होते समय नया भवरूपी पर्याय उत्पन्न होती है, इस विषय में पंचास्तिकाय, गाथा १८, पृष्ठ ३९ में कहा है कि 'देव-मनुष्यादि पर्यायें उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है क्योंकि वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है और बीत जाता है।'

१०४—गाथा १९, पृष्ठ ४० में लिखते हैं कि 'देव जन्मता है और मनुष्य मरता है—ऐसा जो कहा जाता है, वह (भी) अविरुद्ध है क्योंकि मर्यादित काल की देवत्व पर्याय और मनुष्यत्व पर्याय को रचनेवाले देवगतिनामकर्म और मनुष्यगतिनामकर्म मात्र उतने काल तक ही होते हैं।' इसी गाथा की टीका पृष्ठ ४० में श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि '**तथा वेणुदण्डस्थानीय जीव नरनारकादिरूपाः पर्वस्थानीया अनेकपर्यायाः स्वकीयायुः कर्मोदयकाले विद्यमाना भवन्ति, परकीयपर्यायकाले चाविद्यमाना भवन्ति।' अर्थः**—जीव नाम के पदार्थ में पर्वों के समान नर-नारक आदि अनेक पर्यायें, अपने-अपने आयुकर्म के उदय के काल में विद्यमान रहती है। ये ही पर्यायें, परस्पर एक-दूसरे की पर्याय के काल में विद्यमान नहीं है, सर्व पर्यायें भिन्न-भिन्न हैं।

१०५—इन दो गाथाओं की टीका से सिद्ध होता है कि नयी गति की पर्याय अपने-अपने काल में ही प्रगट होती है और अपने काल तक ही रहती है और जब नयी गति की पर्याय उत्पन्न होती है, तब इस गति की पर्याय का आयुकर्म भी एक साथ उदय में आता है, जब आयुकर्म की एक जीव को उदीरणा हुई, तब यह सिद्ध हुआ कि उस जीव को गति की पर्याय और उस गति के रचनेवाले गतिनामकर्म की स्थिति उतने ही काल पूरती थी (कम-ज्यादा नहीं)।

१०६—इसप्रकार जीव का आयुकर्म भी इतने ही काल तक रहनेवाला था, ऐसा न हो तो नयी गति किसप्रकार उत्पन्न होगी ? नयी गति, किसी भी अन्य प्रकार से उत्पन्न नहीं होगी और जब आयुकर्म की उदीरणा होती है, तब नयी गति का नामकर्म और नयी गति का आयुकर्म उदय में आता है।

१०७—इससे सिद्ध हुआ कि जब नये भव की गति, अपने कालक्रम में उत्पन्न होती है, तब पिछले भव की गति पूरी होनी ही चाहिए। इसप्रकार उदीरणा भी अपने ही क्रम में स्वकाल में ही होती है।

[२] दूसरे प्रश्न का उत्तरः—केवलज्ञानी तीन लोक-तीन काल के सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक ही साथ, एक समय में जानते हैं। आयुकर्म की उदीरणा और उस जीव की मृत्यु कब होगी ?—यह वे केवलज्ञानी स्पष्टरूप से जानते हैं, केवलज्ञानी तो क्या अवधिज्ञानी भी अपने अवधिज्ञान के बल द्वारा (१) जीव का मरण काल, (२) आयुकर्म की उदीरणा काल, (३) नये भव की उत्पत्ति का काल, (४) उसके निमित्तभूत गति नामकर्म और (५) आयुकर्म का उदयकाल; उन सब को जानते हैं।

१०८—इसलिए सिद्ध हुआ कि अकालमृत्यु भी अपने स्वकाल में ही होती है, किंतु जीव के आयुकर्म का बंध, उदयरूप नहीं, किंतु उदीरणारूप से परिणमन होनेवाला था, इतना निमित्त का ज्ञान कराने के लिये उसको 'अकालमृत्यु' उपचार से कहा है।

अब मूल प्रश्न १ 'अ' का उत्तर—

ऊपर के विवेचन से इस प्रश्न का सर्व उत्तर सरल हो जाता है, वह निम्न प्रकार है।

(क्रमशः)

पूज्य स्वामीजी के विहार तथा तीर्थयात्रा के शेष समाचार

भेलसा (विदिशा, मध्यप्रदेश)—

तारीख २८-५-६३ पूज्य स्वामीजी के भव्य स्वागत के बाद प्रवचन, फिर जिनमंदिर में भगवान श्री शीतलनाथ भगवान की भक्ति हुई। यहाँ श्री शीतलनाथ भगवान की कल्याणक भूमि है। यहाँ शहर में जैन स्वाध्याय भवन का शिलान्यास पूज्य स्वामीजी के शुभहस्त द्वारा हुआ, नींव की ईंटों पर स्वस्तिक लिख दिया। बड़ी भारी संख्या में जिज्ञासु एकत्र हुए थे, स्वामीजी को ठहरने के लिये बहुत अनुरोध किया था।

उज्जैन—

तारीख २-६-६३ के दिन पूज्य स्वामीजी, उज्जैन पधारे। भव्य स्वागत हुआ। मंडप-पंडाल में मंगल प्रवचन के बाद यहाँ श्री कुन्दकुन्द जैन स्वाध्याय मंदिर जो उज्जैन दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा तैयार हुआ है, उसका उद्घाटन श्री चिमनलालभाई हिंमतलाल (जोरावरनगर) के शुभ हस्त द्वारा हुआ, तथा ऊपर के भाग में श्री जिनमंदिर का शिलान्यास भी श्री चिमनलालजी द्वारा हुआ, इन दोनों प्रसंगों के हर्षोल्लास में श्री चिमनलालजी ने ५००१) उज्जैन दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल को इस खाते में दिया। पूज्य स्वामीजी का निवास स्थान दोनों दिन श्रीमान् शेठ लालचन्दजी के वहाँ था। दोनों दिन दो बार प्रवचन तथा रात्रिचर्चा का कार्यक्रम था। जैन-अजैन समाज ने बहुत प्रेम से लाभ लिया। प्रवचन के बाद जैन मसजा की ओर से शेठ श्री लालचंदजी के शुभहस्त से पूज्य स्वामीजी को सन्मान पत्र अर्पण किया, प्रवचन बाद प्रथम दिन स्वाध्याय मंदिर में जिनवाणी माता की भक्ति पूज्य बहिनश्री बहिन ने कराई थी, दूसरे दिन नमक मंडी दिगम्बर जैन मंदिर में भक्ति कराई थी।

सनावद—

तारीख ४-६-६३ श्री ईश्वरचंद्रजी तथा श्री कँवरचंद्रजी ने बहुत समय से बड़ी तैयारी कर रखी थी। पूज्य स्वामीजी का भव्य स्वागत हुआ, बाद मंगल प्रवचन हुआ। सनावद के समीप १४ मील पर श्री सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र है, यहाँ पूज्य स्वामीजी को भी छह साल पूर्व यात्रा के मधुर स्मरण प्रगट होने लगे। फिर से इस सिद्धधाम के दर्शनवंदना की भावना जागृत हुई... तुरंत सिद्धक्षेत्र

की वंदना का कार्यक्रम तया हुआ। पूज्य स्वामीजी सहित १०० यात्रीगण ओंकारेश्वर घाट पहुँचे... नाव में बैठकर सिद्धवरकूट पहुँचे। रास्ते में भक्ति भजन की धुन चली, भारी उत्सव लगता था। सिद्धवरकूट सिद्धिधाम के भक्ति आनन्द पूर्वक दर्शन-पूजन किये। पूज्य स्वामीजी ने भी अष्टद्रव्य से पूजन किया था। यात्रा करने के बाद सनावद में प्रवचन हुआ। बाद जिनमंदिर में भक्ति हुई थी।

खंडवा (म.प्र.)—

तारीख ५-६-६३ पूज्य स्वामीजी पधारे, बड़ा भारी उमंग भरा स्वागत हुआ। बाद सभा में समयसार गाथा १४ पर मंगल प्रवचन हुआ, बाद दोपहर और तारीख ६-६-६३ को दो बार समयसारजी कर्ताकर्म अधिकार पर प्रवचन हुआ। रात्रिचर्चा में भी सभी समाज ने जिज्ञासा से लाभ लिया। दोपहर के प्रवचन के बाद, १ दिन जिनमंदिर में पूज्य बहिन श्री बहिन ने भक्ति कराई थी। भक्ति में भी अतिशय ज्यादा संख्या होने से दूसरे दिन पंचायती बड़ा हाल में श्री जी को विराजमान करके एक घण्टे तक भक्ति का सुंदर कार्यक्रम रहा। इस समय भक्ति सुननेवालों की उत्सुकता एकाग्रता व प्रेम देखते ही बनता था। सारे शहर में धार्मिक चर्चा और धर्म प्रभावना का वातावरण भी अपूर्व था। सभी ने उत्साहपूर्वक लाभ लिया।

ऊन-पावागिर—

तारीख ७-६-६३, यह सिद्धक्षेत्र है, यहाँ सारे दिन ठहरकर जिनेन्द्र भगवान की भक्ति-पूजन किये। पूज्य स्वामीजी ने यहाँ भी अष्टद्रव्य से पूजन किया था। सभी के लिये बड़ भारी आनन्द और विश्रान्ति का दिन था।

बड़वानीजी सिद्धक्षेत्र—

तारीख ८-६-६३, पूज्य स्वामी के साथ करीब १०० संख्या में बड़ी भक्ति उत्साहपूर्वक जिनेंद्र भगवान की पूजन करके पहाड़ के ऊपर बावनगजाजी श्रीऋषभदेव भगवान की वंदनार्थ चले। प्रथम चूलगिरि पहाड़ पर जहाँ प्राचीन प्रतिमाजी का संग्रह है, उस मंदिर में जाकर अष्टद्रव्य से समूह पूजन किया। बाद पूर्व दिशा में मंदिरजी के पीछे श्री कुन्दकुन्दाचार्य की दो प्रतिमा खड्गासन दो हाथ जोड़कर मानों सीमंधर भगवान की वंदना कर रहे हैं (सोनगढ़ में समवसरण में भी ऐसी मूर्ति है।) देखकर पूज्य स्वामीजी ने वंदन नमस्कार करके, विक्रम सं० २०१३ में यहाँ आये थे और श्री कुन्दकुन्दाचार्य श्री सीमंधर भगवान के पास गये थे, यह बात याद की थी। यहाँ आचार्यदेव की पूजन और भक्ति की थी। बाद प्राचीन मूर्तियों के संग्रह के दर्शन किये। बाद

बावनगजाजी भगवान के चरण समीप पहुँचकर चरण स्पर्श; अभिषेक-पूजन व भक्ति करके, सब धर्मशाला में आये। वहाँ २२ जिनमंदिर हैं, दर्शन किये। दोपहर में जिनमंदिर में भक्ति हुई। बड़वानीजी शहर के प्रायः सब जैन भाई-बहिनें खास लाभ लेने आये थे। प्रश्नोत्तर, तत्त्वज्ञान की चर्चा और सिद्धक्षेत्र से समश्रेणी में यहाँ से भी अनंत जीव मुक्तिधाम पधारे हैं, वह ठीक लोकाग्र के सामने ही हैं, उसकी पहिचान पूर्वक स्मरण और वीतराग स्वरूप की महिमा सुन्दर ढंग से पूज्य स्वामीजी ने समझाई। सभी अति आनन्दित हुए।

संतरामपुर—

तारीख ९-६-६३, तीर्थधाम से वापिस सोनगढ़ आते वक्त बीच में संतरामपुर आकर विश्राम लिया। यहाँ दाहोद शहर से बहुत संख्या में जिज्ञासुगण उपदेश श्रवणार्थ आये थे। ग्राम ने बड़ा उत्सव मनाया था।

अहमदाबाद—

तारीख १०-६-६३ पूज्य स्वामीजी मणिनगर में ठहरे थे, दोपहर को प्रवचन हुआ था। बाद तारीख ११-६-६३ को सोनगढ़ पधारे। स्वागत हुआ, सभी ने खुशी मनाई।

अशोकनगर—

(गुना-म.प्र.) यहाँ तारीख ६-६-६३ को 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल' की स्थापना हुई। उस समय पण्डित श्री फूलचंदजी शास्त्री (वाराणसी) पधारे थे। इस मंडल के उद्देश्य में नियमित प्रतिदिन सामूहिक स्वाध्याय तथा जिनेन्द्र भगवान का पूजन-भक्ति के साथ ही साथ भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय में किसी भी प्रकार का विकार एवं शिथिलता न आने पावे इसके लिये प्रयत्नशील तत्पर रहना। इसके अध्यक्ष चौधरी लखमीचंदजी, मंत्री राजमलजी जैन मुनीम चुने गये हैं। पण्डित श्री हुकमीचंद्रजी शास्त्री के तत्त्वावधान में मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ द्वारा तत्त्व के प्रति भूल का निराकरण और विपरीत अभिप्राय रहित सत्य श्रद्धान के विषय को मुख्य रखकर, दैनिक नियमित विवेचन कक्षा के रूप में चल रहा है। *—अमोलकचंद 'बन्धु'*

दशलक्षणी पर्यूषण पर्व

तारीख २४-८-६३ भाद्र पद सुदी ५ से तारीख २-९-६३ भाद्रपद सुदी १४ तक मनाया जायेगा। वदी १ को क्षमावाणी पर्व।

सुवर्णपुरी समाचार

प्रवचन में पूज्य स्वामीजी द्वारा सबेरे प्रवचनसार गाथा ५० तथा दोपहर में श्री समयसारजी कर्ताकर्म अधिकार गाथा ७८ चलती है। रात्रि के समय ८ से ९ थोड़े दिन धवल टीका प्रथम भाग चला, वर्तमान में श्री राजमल्लजी कृत समयसार कलश टीका और तत्त्वचर्चा चलती है। नई यात्री धर्मशाला बन रही है और बहिनों के आश्रम में श्री गोगीदेवी ब्रह्मचर्य आश्रम में शेठ बच्छराजजी द्वारा स्वाध्याय भवन तैयार हो चुका है।

अष्टाह्निका पर्व में—नियमित समूह पूजा तथा मंडल विधान सहित बृहत्सिद्ध चक्र पूजन, जाप्य सहित भक्ति उत्साहपूर्वक चलता था। यह पूजन सेठ श्री बच्छराजजी गंगवाल लाडनूंवालों की ओर से था।

टेपरील द्वारा प्रवचन प्रचार

परमोपकारी पूज्य स्वामीजी के प्रवचन, हिन्दी व गुजराती भाषा में नई टेपरीलें भरकर, टेपरील रेकोर्डिंग मशीन सहित आमंत्रित गाँव में प्रचारक श्री मधुकरजी को भेजते हैं। ढाई साल से यह कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। मधुकरजी जैनदर्शन शिक्षणवर्ग भी चलाते हैं, वैराग्यमय भजन तथा जिनमंदिर में भक्ति का संगीतमय कार्यक्रम जानते हैं। प्रथम से आमंत्रण आना चाहिये, और गाँव के अग्रणी व संस्था के प्रमुख व मंत्री द्वारा आमंत्रण आने से भेजते हैं।

नोट:—जहाँ पर टेपरील मशीन हो; टेपरील पास्ट पार्सल द्वारा बुलाना हो तो एक टेपरील का २५) रुपया डिपाजीट तौर पर लिया जाता है।

पत्र व्यवहार का पता—
प्रवचन प्रचार विभाग
द्वारा दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

ज्ञान तथा ज्ञेयरूप सर्व द्रव्यों की स्वतन्त्रता; निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की भी स्वतन्त्रता

[श्री समयसारजी गाथा ३५६ व ३६५ पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन]

[सोनगढ़ श्रावण कृष्णा प्रतिपदा]

-: दिव्यध्वनि-वीर शासन जयन्ती :-

यहाँ सर्व विशुद्धज्ञान अधिकार चल रहा है। आत्मा अनंत गुणों का पिंड अभेद चिन्मात्र वस्तु है। आत्मा को गुणभेद से पहचानने के लिये ज्ञान, दर्शन, चारित्रवाला कहा जाता है; वास्तव में आत्मा तो ज्ञायक ही है, यह निश्चय है तथा आत्मा स्व को जानता है, ऐसा भेद करना सो व्यवहार है; इतना भेद भी अखंड वस्तु में नहीं है, स्व-स्वामिअंशरूप भेद श्रद्धा के विषय में मान्य नहीं है।

आत्मा स्वभाव से ही परवस्तु के त्यागस्वरूप-त्याज्यरूप है अर्थात् चारित्ररूप है, ऐसा भेद निश्चय में नहीं होता, ऐसा कहकर निश्चय की वास्तविक स्थिति जानना। प्रथम अभेद, निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र संबंधी वर्णन किया। अब व्यवहार से दृष्टांत द्वारा समझाते हैं कि जिसप्रकार खड़िया मिट्टी (पोतने का चूना, कलई) है, वह दीवाल, लकड़ी आदि द्रव्यों के स्वभावरूप नहीं होती तथा उन्हें अपने श्वेत स्वभावरूप से परिणमित नहीं करती, यह सत्य है। ऐसा स्वीकार करने पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध क्यों है, वह व्यवहार (-उपचार) द्वारा बताने में आता है।

कलई स्वयं श्वेत स्वभावरूप से परिणमित होती है, उसमें दीवार तो निमित्त है और कलई जिसको निमित्त है, ऐसे दीवार आदि परद्रव्य हैं, वे स्वयं अपने-अपने स्वभाव से ही परिणमन करते हैं, तथापि दीवार आदि को कलई श्वेत करती है, ऐसा व्यवहार-उपचार किया जाता है। कलई का श्वेतपना स्वयं अपने से प्रसिद्ध है, तथापि उसमें दीवार निमित्त तथा दीवार को श्वेत होने में कलई निमित्त, ऐसा परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंधरूप व्यवहार करने में आता है; उसीप्रकार वास्तव में दर्शन, ज्ञान गुणों से भरपूर आत्मा स्वयं परद्रव्यों के स्वभावरूप से परिणमित होता ही नहीं; जीव राग, द्वेष, वाणी और शरीररूप नहीं हो जाता, क्योंकि वह चैतन्य से विरुद्ध ज्ञेय है—उसरूप ज्ञान-दर्शन का होना असंभव ही है। दर्शन, ज्ञान अपने कारण से ही निरंतर परिणमन करते हैं, ज्ञेय पदार्थ अपने काल में, अपने कारण निरंतर परिणमन करते हैं। निमित्त-उपादान दोनों का परिणमन अनादि अनंत स्वतंत्र हो रहा है।

किसी द्रव्य को किसी काल में परद्रव्य या परक्षेत्र काल आदि किसी की प्रतीक्षा करना पड़े—परिणमन का प्रवाह रुक जाये—ऐसा कभी नहीं होता। किसी के कारण किसी का परिणमन आगे या पीछे हो जाये, ऐसा भी नहीं होता; मात्र लोक में संयोग दृष्टिवाले व्यवहार से कहते हैं कि इससे इसमें ऐसा हुआ, वह तो कहनेमात्र (कथनमात्र) कारण है।

ज्ञान अपने काल में, अपने कारण परिणमन करता है, ऐसे ज्ञानरूप से परिणमन करता हुआ आत्मा अपने ज्ञान परिणाम में पुद्गलद्रव्य तथा रागादि ज्ञेयरूप से निमित्त है, ऐसे अपने ज्ञानगुण के स्वभाव से भरपूर स्वभाव के परिणाम द्वारा निजशक्तिरूप उपादान से स्वयं परिणमता है किंतु पर ज्ञेयोंरूप परिणमित नहीं होता—पररूप से, रागरूप से उत्पन्न नहीं होता, किंतु निरंतर अपने कारण अपने भावरूप से उत्पन्न होता है।

शुभाशुभराग, पुस्तक, वाणी ज्ञेयरूप निमित्त है; ज्ञान, ज्ञान के कारण है, वहाँ ज्ञान की योग्यता के प्रमाण में ज्ञेय निमित्त है। ज्ञेयों के प्रमाण में ज्ञान नहीं होता। सामने ज्ञेय पदार्थ भिन्न वस्तु है, वह ज्ञान में ज्ञेयमात्ररूप से निमित्त है। निमित्त कहीं ज्ञान को उत्पन्न नहीं करता, किंतु ज्ञेय होने में निमित्त बनता है।

दया, दान, भक्ति आदि का शुभराग आता है, वह ज्ञान को उत्पन्न नहीं करता, किंतु वे ज्ञान में ज्ञेय होने में निमित्त हैं। शुभराग द्वारा ज्ञान नहीं है और ज्ञान द्वारा राग का परिणमन नहीं होता; रागादि भी ज्ञान से भिन्न ज्ञेय हैं। ज्ञेय का ज्ञेयपना निश्चित करने में ज्ञान निमित्त है और ज्ञान का ज्ञानपना निश्चित करने में ज्ञेय निमित्त है, ऐसा परस्पर निमित्त-नैतित्तिक भावों का व्यवहार है अवश्य, परंतु वास्तव में किसी के कारण किसी का परिवर्तन नहीं है। लोकालोक है, वह केवलज्ञान में निमित्त है तथा उस लोकालोक को ज्ञेयरूप से प्रसिद्ध होने में ज्ञान निमित्त है। एक समय की केवलज्ञान पर्याय में तीन कालवर्ती सम्पूर्ण विश्व ज्ञेयरूप से निमित्त हैं।

यहाँ एक समय में पूर्ण ज्ञान है, उसमें सम्पूर्ण विश्व निमित्त होना चाहिये और ज्ञान का परिणमन ज्ञेयों की प्रसिद्धि में निमित्त है। दोनों अपनी-अपनी वर्तमान परिणामशक्ति से ही परिणमन करते हैं। ज्ञान दूसरे का परिणमन करानेवाला नहीं है, उसीप्रकार दूसरे के द्वारा परिणमन करे, ऐसा नहीं है; ज्ञान ही स्वयं प्रत्येक समय में ज्ञानरूप से ज्ञातारूप से उत्पन्न होता है, उसमें ज्ञेय उनके स्वकाल में निमित्त हैं, और उन-उन ज्ञेयों को ज्ञेयरूप से प्रसिद्ध करने में ज्ञान निमित्त है।

जिसप्रकार दर्पण तथा नारियल आदि दर्पण की स्वच्छता में बाह्य-स्थित द्रव्य निमित्त हैं

और सामने के पदार्थों की अवस्थाएँ बताने में दर्पण की स्वच्छता निमित्त है। किंतु किसी के कारण किसी की अवस्था होती है, ऐसा नहीं; उसीप्रकार ज्ञान की पर्याय शास्त्र को जानती है, उसमें शास्त्र निमित्त है किंतु शास्त्रादि से ज्ञान की पर्याय नहीं हुई। यदि निमित्तों से ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो तो निमित्त के स्थान में निमित्त नहीं रहा—उपादान हो गया। निमित्त को उपचार (व्यवहार) कारण कब कहा जायेगा कि जब ज्ञान जिस ज्ञेय को जाननेरूप परिणमित हो, उस ज्ञेय को ज्ञान का निमित्त कहा जायेगा और ज्ञेय को ज्ञेयरूप से प्रकाशित करने में ज्ञान निमित्त कहलायेगा, किंतु इसका परिणमन है, इसलिये दूसरे का परिणमन है, ऐसा नहीं है—ज्ञेय है, इसलिये ज्ञान है, ऐसा नहीं है।

जीव घटपटादि को देखकर राग करे तो वे ज्ञेय राग होने में निमित्त कहलायेंगे। निमित्त के कारण राग हुआ, ऐसा कहना वह असत्य कथन है, उपचाररूप व्यवहार है।

सामने जैसा पदार्थ हो, वैसा ही ज्ञान होता हो तो सबको सच्चा ज्ञान होना चाहिये, किंतु वैसा नहीं होता। अपनी वर्तमान योग्यतारूप स्वसामर्थ्य से ज्ञान होता है, उसमें सामने के विषय ज्ञेयरूप से निमित्त हैं, इतना ज्ञेय-ज्ञान का व्यवहार है, किंतु जीव को पूजा, भक्ति तथा श्रवण का राग आया, इसलिये ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है और ज्ञान के कारण राग अथवा इच्छा हुई, ऐसा नहीं है। रागादि को उसी रूप ज्ञेय बनाने में ज्ञान निमित्त है। ज्ञान में ज्ञेय निमित्त है, किंतु किसी के निमित्त द्वारा दूसरे में फेरफार हो जाये, ऐसा नहीं है। यदि निमित्त द्वारा उपादान का कार्य हो तो निमित्त माना कहा जाये, ऐसा नहीं है, क्योंकि चेतयितादि (जीवादि) किसी अन्य को परिणमित नहीं कर सकते तथा कोई किसी से परिणमित नहीं होता।

जिसप्रकार दीवार को श्वेतरूप होने में कलई निमित्त है; उसीप्रकार ज्ञान है, वह ज्ञेय को ज्ञेयरूप से प्रगट होने में निमित्त है, इससे ज्ञान पुद्गल के स्वभाव को जानता है; लेकिन पररूप हो जाय, या पररूप उत्पन्न हो—ऐसा कभी नहीं होता। इसलिये पर का कर्तापना कहना वह मात्र निमित्त बताने के लिये व्यवहार है। दो भिन्न द्रव्यों की पर्यायों में दीवार-कलई के दृष्टांत से परस्पर निमित्त कहने का व्यवहार है, उसीप्रकार आत्मा श्रद्धा-दर्शन शक्ति से भरपूर है, निमित्त का ज्ञान कराने के लिये उसे नवतत्त्वों के भेद और देव, शास्त्र, गुरु तथा छह द्रव्यों की श्रद्धा करनेवाला कहना, वह व्यवहारनय है। उसमें श्रद्धा करनेयोग्य छह द्रव्य तथा नवतत्त्वों के विकल्प निमित्त हैं। निमित्त, निमित्तरूप से है किंतु उससे श्रद्धा तथा दर्शनउपयोगरूप पर्याय परिणमित हो, ऐसा नहीं है, कारण कि जीव स्वयं ही दर्शन-ज्ञानादि गुणों की पर्यायोंरूप से परिणमित होता है, अपने ज्ञानादि

कार्य को ही प्रगट करता है, उसमें ज्ञेयों तथा श्रद्धा के बाह्य विषय निमित्त हैं, किंतु वे कोई जीव की श्रद्धादि पर्यायों को उत्पन्न करनेवाले नहीं हैं।

दर्शनमोह का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय हो तो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। देव-दर्शन, वेदना, जातिस्मरण आदि से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा शास्त्र में लिखा है न? उसका अर्थ यह है कि—यह तो निमित्तमात्र है, ऐसा समझना। जीव स्वयं निर्मल श्रद्धा-ज्ञानरूप से परिणमित हो तो उसको निमित्त कारण (व्यवहार-उपचार कारण) कहने में आता है। निमित्त है, इसलिये नैमित्तिक है, ऐसा नहीं। वस्तु स्वयंसिद्ध है, अपने से है, पर से नहीं है; उसीप्रकार वस्तु के गुण और उनकी अनेक पर्यायें भी स्वयंसिद्ध हैं। अपने से है; पर से नहीं है, यह सत्य बात है, तथापि परवस्तु उसको निमित्त है, ऐसा कहना वह निमित्त का ज्ञान कराने के लिये व्यवहारनय का कथन है।

छह द्रव्य, नवतत्त्व, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व्यवहारश्रद्धा के विषयरूप से, ज्ञेयरूप से निमित्त हैं। जब यह आत्मा परमावगाढ़ सम्यग्दर्शनरूप तथा केवलज्ञानरूप परिणमता है—उत्पन्न होता है, उस समय समस्त लोकालोक निमित्त है और छह द्रव्यस्वरूप संपूर्ण विश्व उसको निमित्त है। कोई किसी के कारण नहीं है। प्रत्येक पदार्थ स्वयंसिद्धता साबित करता है।

अपूर्ण ज्ञान है, वहाँ ज्ञानी को निश्चय से अपने आत्मा का ही आश्रय है, तथा व्यवहारश्रद्धा-ज्ञान में छह द्रव्य आदि तथा शुभरागादि निमित्त हैं, वे तो उनके भाव से (उनके स्वरूप से) उत्पन्न होते हैं। उन्हें उसी रूप प्रसिद्ध करने में ज्ञान निमित्त है। दोनों का निश्चय से कोई संबंध नहीं है किंतु परस्पर निमित्तपने का व्यवहार है, वह दर्पण का दृष्टांत देकर समझाया है।

आत्मा ज्ञानभाव से परिणमित होता है, सामने ज्ञेय ज्ञेयरूप से निमित्त है। निमित्त निमित्तरूप से परिणमता है, उसमें ज्ञान प्रकाशकरूप से निमित्त है। श्रद्धेय को श्रद्धावानरूप से निमित्त है, किंतु पर को कौन ला सकता है?—कौन प्राप्ति करा सकता है? परस्पर निमित्त है, ऐसा कहना वह व्यवहार से है। इसमें किसी की पराधीनता नहीं बतायी है।

औषधि का दृष्टांत:—औषधि और कागज की पुड़िया अपने कारण, अपने काल में अपने स्वभाव से परिणमित होते हैं, वे ज्ञान के विषयरूप ज्ञेय होने में ज्ञान को निमित्त हैं और ज्ञान तथा उसकी श्रद्धारूप से परिणमित उस भाव में औषधि आदि निमित्त हैं, किंतु किसी के कारण किसी में परिवर्तन नहीं होता, तथापि परस्पर निमित्तपना कहना, वह व्यवहार है।

उसीप्रकार भगवान आत्मा चेतयिता है, वह अपने श्रद्धा-ज्ञानस्वभाव से परिणमता

है—उत्पन्न होता है, उसमें छह द्रव्य, नवतत्त्व निमित्त हैं किंतु यदि निमित्त के कारण जीव श्रद्धा-ज्ञानरूप परिणमित हो तो दो तत्त्व भिन्न नहीं रहेंगे तथा निमित्त, निमित्तरूप से नहीं रहेगा। सर्वज्ञकथित ज्ञेय पदार्थ जैसे हैं, उसीप्रकार जाने, माने तो वे निमित्तरूप से सच्चे हैं और ज्ञान, ज्ञेय को ज्ञेयरूप से प्रगट करने में निमित्तरूप से सच्चा है। यदि ज्ञेय पदार्थों में छह द्रव्य अवश्य है, ऐसा न मानें, न जानें, कालद्रव्य की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है (कालद्रव्य वह उपचार ही है), ऐसा कोई माने तो उसका ज्ञान झूठा और ज्ञेय भी झूठा है।

आत्मा नित्य दर्शन-श्रद्धा-ज्ञानस्वभावी होने से अपने स्वभाव से देखता है, जानता है और श्रद्धा करता है। निश्चय से अपने को देखता है-जानता है, श्रद्धा करता है; पर को जानता है, देखता है, ऐसा संबंध बतलाना, सो व्यवहार है। पर्याय में परस्पर निमित्तपने का व्यवहार है, किंतु किसी दूसरे के कार्य का कर्ता है—ऐसा नहीं है। द्रव्य में गुण त्रिकाल है। कोई गुण प्रगट नहीं होता, लेकिन उसकी पर्याय एक समयपर्यंत को नयी-नयी प्रगट होती है। द्रव्य सत्, गुण सत् और उसकी प्रत्येक पर्याय भी सत् है, उसमें स्व-स्वामी अंश का भेद करना भी व्यवहार है, किंतु उससे क्या साध्य है ?—पर तथा भेद के लक्ष से तो राग की उत्पत्ति होती है।

जिसप्रकार श्रद्धा-दर्शन और ज्ञान की स्वयंसिद्धता बतलायी, वैसी ही चारित्र में भी समझना। आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वभाव से भरपूर और पुण्य-पाप, शरीर तथा शरीर की क्रिया—उनके अभावस्वभावरूप है। पर्याय में राग है, उतने अंश में परद्रव्य के अवलंबनरूप राग आता अवश्य है किंतु आत्मा, परद्रव्य के साथ तन्मय नहीं होता। पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में नहीं है, आत्मा के आधीन नहीं है। आत्मा, रागादि पुण्य-पाप तथा देह की क्रिया के अभावस्वरूप है, और अखण्ड श्रद्धा-ज्ञान-शांतिमय समरसी आनन्द से भरा हुआ है। इसप्रकार अंतरंग में प्रकाशमान स्वभाव की ओर उन्मुख होनेवाला आत्मा स्वयं निश्चयनय से अपोहनस्वरूप है, उसे राग का और पर का त्याग करनेवाला कहना, पर का आचरण करनेवाला कहना, वह तो आरोप से (व्यवहार से) कथन मात्र है।

'भेदज्ञान साबुन भयो, समरस निर्मल नीर,
धोबी अन्तर आत्मा धोवे निजगुण चीर।'

स्वसन्मुखतारूप भेदविज्ञानी आत्मा वीतरागभाव से परिणमन करता हुआ परद्रव्य और रागादि के अभाव स्वभावरूप से उत्पन्न होता है, उसको व्यवहार से त्याग करनेवाला कहा जाता है।

निराकुलतारूप शांति कहाँ से आती है ? भेदविज्ञानपूर्वक अंतर में एकाग्रता से प्रगट होती है। बाहर से शांति नहीं मिलती। कोई जीव, पर का ग्रहण त्याग तथा शरीर की क्रिया व्यवहार से भी नहीं कर सकता, किंतु ज्ञेयरूप निमित्तरूप होनेवाली देह की क्रिया और राग की क्रिया को उसरूप जानना, वह व्यवहार है, आत्मा का व्यवहार उसकी पर्याय में ही होता है, भिन्न वस्तु में नहीं होता।

प्रश्न—भगवान की पूजा, भक्ति तथा नवधाभक्तिपूर्वक मुनि को आहारदान देने का शुभभाव क्या परद्रव्य के आधार बिना होता होगा ?

समाधान—निमित्त की मुख्यता से व्यवहार के कथन होते हैं। वहाँ उसप्रकार का राग उस भूमिकावाले को आता अवश्य है, लेकिन निमित्त के कारण जीव को राग हो और राग के कारण शरीर की क्रिया तथा धर्म हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता।

आत्मा, शरीर और वाणी का स्वामी नहीं है। धर्मी जीव, शुभ इच्छा का भी स्वामी नहीं और शरीर की क्रिया असद्भूत व्यवहारनय से भी नहीं कर सकता। मात्र निमित्त का ज्ञान कराने के लिये वैसा कथन करने की रीति है, उस समय राग को और राग के निमित्त को ज्ञेयरूप से जानता है, ऐसा कथनमात्र उसके साथ व्यवहार संबंध है। परंतु आत्मा, राग और देह की क्रियारूप से परिणमित होता है, ऐसा तात्पर्य नहीं। राग का भाग आस्रवतत्त्व है, उसरूप आत्मा नहीं होता। नग्न शरीररूप तथा मुनिदशा में होनेयोग्य २८ मूलगुण के रागरूप आत्मा परिणमित नहीं होता अर्थात् उन्हें अपने निश्चयचारित्रस्वभाव में नहीं लाता, किंतु उस काल में अपने ज्ञान-आनन्दमय वीतराग स्वभावरूप से उत्पन्न होता हुआ आत्मा व्यवहार-त्याग के विकल्प को जानता है, ऐसा कहने जितना उस भूमिका का व्यवहार है; इसके अतिरिक्त परमार्थ से इस आत्मा को राग का त्याग करनेवाला कहना, वह नाममात्र है। इसप्रकार भगवान महावीर ने अतिस्वभाव से स्वतन्त्रता, यथार्थता और वीतरागता ग्रहण करने का आदेश वीर शासन जयंती के दिन दिया है।

केवलज्ञान का दिव्य संदेश देनेवाले, केवली का विरह भुलानेवाले, सत्दृष्टिवंत् श्री गुरुदेव की जय हो ! ज्ञानामृतदाता वीरपुत्र श्री गुरुदेव की जय हो !

★

आत्मधर्म के ग्राहकों से नम्र निवेदन

पोस्ट आफिस से वी०पी० करने का फार्म न मिलने से कई ग्राहकों को शीघ्र वी०पी० न कर सके, अब वी०पी० कर रहे हैं, अवश्य छुड़ा लेवें। आत्मधर्म का अंक हरेक मास की १०वीं तारीख को मदनगंज (किशनगढ़) से रवाना होता है। न मिलने पर १० दिन बाद शिकायत करें, गत साल की कोई भी शिकायत हो तो उसके लिये भी पत्र देना। —पत्र इस पते पर देवें।

श्री जगजीवन बाउचंद दोशी, पो० सावरकुण्डला (सौराष्ट्र)

जैनदर्शन शिक्षण वर्ग

इस साल प्रौढ़ आयु के जैन भाईयों के लिये तारीख २५-७-६३ से तारीख १३-८-६३ तक जैनदर्शन शिक्षणवर्ग चलेगा। लाभ लेने के इच्छुक धर्म जिज्ञासुओं को परम उपकारी पूज्य सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के दिगम्बर जैनधर्म के मूल सिद्धांतों के रहस्यमय प्रवचनों का भी लाभ मिलेगा। युवक वर्ग भी लाभ ले सकते हैं। आनेवाले धर्म जिज्ञासुओं के ठहरने, जीमने की व्यवस्था संस्था की ओर से है। आने की भावना हो, वे पहले से सूचित करें।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (चतुर्थ आवृत्ति)

१८००० बुक छप चुकी हैं, बिक चुकी हैं, समाज में धर्म जिज्ञासा का यह नाप है। शास्त्राधार सहित संक्षेप में खास प्रयोजनभूत तत्त्वज्ञान की जानकारी के लिये यह उत्तम मार्गदर्शक प्रवेशिका है। जैन जैनेतर सभी जिज्ञासुओं में नि:संकोच बांटने योग्य है। इंगलिश भाषा में भी अनुवाद कराने योग्य है। जिसमें अत्यंत स्पष्ट सुगम शैली से मूलभूत अति आवश्यकीय बातों का ज्ञान कराया गया है। बढ़िया कागज, छपाई, सुंदर आकार, पृष्ठ संख्या १०५, मूल्य - सिर्फ २५ नये पैसे, पोस्टेजादि अलग।

[श्री समयसारजी मूलशास्त्र १५०० छपे थे, तुरंत बिक जाने के कारण अबकी बार २२०० प्रति छपाने की तैयारी चल रही है।]

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव

(दूसरी आवृत्ति)

धर्म जिज्ञासुओं के लिये महान उपकारी साहित्य जो जैनधर्म का महत्वपूर्ण तात्त्विक और प्रयोजनभूत ग्रंथ है। जो जिज्ञासुओं के लिये सर्व समाधानरूप अपूर्व वस्तुस्वभाव के ज्ञानमय तत्त्वदृष्टि प्रगट करनेवाली महान चीज़ है। इसके मुख्य विषय—

१- क्रमबद्धपर्याय के स्वरूप का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण तथा उनमें दोष कल्पना का निराकरण है।

२- सम्यक् अनेकांत गर्भित सम्यक् नियतवाद-जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म—ये पंच समवाय और क्रमबद्ध के निर्णय में स्वसन्मुख होने का सच्चा पुरुषार्थ तथा अनेकांत।

३- अनेकांत, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार।

४- द्रव्य पर्याय संबंधी अनेकांत।

५- अनंत पुरुषार्थ।

६- वस्तुविज्ञान अंक जिसमें श्री प्रवचनसारजी गाथा ९९ के ऊपर पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रवचनों का सार है।

७- आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त हो, इस विषय में प्रवचनसार शास्त्र में ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन है, उस पर खास प्रवचनों का सार-[जिसमें नियतनय, अनियतनय, कालनय, अकालनय से वर्णन है] बढ़िया जिल्द, सुंदर कागज व आकर्षक बढ़िया टाइप में उत्तम छपाई है, पत्र संख्या ४००, मूल्य २-५० नये पैसे। ५० पुस्तक लेने पर १० टका के हिसाब से कमीशन देंगे। इस पुस्तक की छपाई, कागज, बाइंडिंग आदि सर्वोत्तम होने पर भी लागत से डेढ़ रुपया कम मूल्य रखा गया है।

पता—**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५-०	जैन बाल पोथी	०-२५
प्रवचनसार	प्रेस में	छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
नियमसार	५-५०	छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०-८७
पंचास्तिकाय	४-५०	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२-५०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तीसरी आवृत्ति)	५-०	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१-८५
मुक्ति का मार्ग	०-६०	जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१-४५
समयसार प्रवचन भाग १	४-७५	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
समयसार प्रवचन भाग २	४-७५	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०-८५
समयसार प्रवचन भाग ३	४-२५	भेदविज्ञानसार	२-०
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०	अध्यात्मपाठसंग्रह पक्की जिल्द	५-०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]		'' '' कच्ची जिल्द	२-२५
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०	भक्ति पाठ संग्रह	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०	वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०-६०	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
द्वितीय भाग	०-६०	स्तोत्रत्रयी	०-५०
तृतीय भाग	०-६०	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
श्री अनुभवप्रकाश	०-३५	'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक चंदा	३-०
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१-०	'' फाईलें सजिल्द	३-७५
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन		शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
बृ० पूजा भाषा	०-७५	जैनतत्त्व मीमांसा	१-०

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।